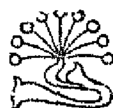
साहित्य-सुधा

द्वितीय भाग

(वर्नाक्युलर मिडिल स्कूलों की कक्षा ६ के लिये)



प्रथमवार]　　१९४६　　[मूल्य १॥)

प्रस्तावना

किसी भी देश की उन्नति का उत्तरदायित्व बहुत अशों में उस देश के अध्यापकों पर होता है। जो आज विद्यार्थी हैं वे ही कल देश के नागरिक होंगे। इसलिए विद्यार्थियों के मानसिक विकास और चरित्र-निर्माण की ओर जितना भी ध्यान दिया जाय कम है। हमें सदैव विद्यार्थियों के सामने ऐसे आदर्श प्रस्तुत करने चाहिए जिनसे वे सच्चे सरल प्रकृति वाले, परिश्रमी और विचारशील नागरिक बन सकें। यों तो प्रत्येक विषय की शिक्षा विद्यार्थी के मानसिक विकास और चरित्र-निर्माण मे योग देती है, किन्तु इस सम्बन्ध मे मातृ-भाषा की शिक्षा का महत्व और विषयों की शिक्षा की अपेक्षा अधिक है। मातृ-भाषा की शिक्षा से विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विकास मे विशेष रूप से सहायता मिलती है और शिक्षा का माध्यम भी यही होने के कारण मातृ-भाषा का ज्ञान और विषयो को भी भली प्रकार समझने की क्षमता प्रदान करता है। मातृ-भाषा की शिक्षा के इस महत्व और उत्तर-दायित्व को सामने रख कर प्रस्तुत पुस्तकों का सम्पादन किया गया है।

हमारे प्रान्त के शिक्षा-विभाग की ओर से प्रकाशित की गई विज्ञप्ति में, इन पुस्तकों के सम्बन्ध मे, कुछ निर्देश दिये गये हैं। साहित्य-सुधा के तीनों भागों के सम्पादन मे उनका पूर्ण रूप से पालन किया गया है। लेखो के चुनाव में इस बात का ध्यान रखा गया है कि वे बच्चों की उत्सुकता को जाग्रत करने वाले हों और उनकी लाभदायक जानकारी के क्षेत्र को अधिक विस्तृत बनावें। ऐसी रचनाओं की भी इन पुस्तकों में

प्रचुरता है, जो विद्यार्थियों के सम्मुख उच्च आदर्श उपस्थित करके उनके चरित्र निर्माण में सहायक होगी।

विभिन्न कक्षाओं के लिए पाठों के विभाजन में आयु के साथ परिवर्तित और विकसित होती हुई बच्चों की मनोवैज्ञानिक स्थिति का भी ध्यान रखा गया है। कक्षा पाँच के लिए सम्पादित की गई पुस्तक मे अधिकांश पाठ रोचक होने के साथ ही बालकों के सामान्य ज्ञान को बढ़ाने वाले भी हैं। कक्षा पाँच से ऊपर की कक्षाओं की ओर बढ़ने के साथ-साथ पुस्तक अधिक साहित्यिक होती चली गई हैं और इस बात का प्रयत्न किया गया है कि कक्षा सात के विद्यार्थियो का हिन्दी की विभिन्न शैलियों और प्रसिद्ध कलाकारों से प्रारम्भिक परिचय हो जाय। इसलिए इस कक्षा की पुस्तक में प्रायः प्रसिद्ध कलाकारों की कृतियों में से ही उपयुक्त सरल रचनाएँ छाँट कर दी गई हैं। इसके अतिरिक्त इतिहास, भूगोल, विज्ञान, यात्रा, पशु-पक्षी, महान् पुरुषों के जीवन-चरित्र, नवीन खोज आदि सभी विषयों पर पाठ रखे गये हैं। शैली के दृष्टिकोण से भी नाटक, कहानी, निबन्ध आदि सभी प्रकार की रचनाओं का समावेश किया गया है। वर्तमान युद्ध ने संसार को अनेक रूपों मे प्रभावित किया है। इसलिए इस सम्बन्ध में विद्यार्थियों की जानकारी बढ़ाने के लिए कुछ पाठ विशेष रूप से इन पुस्तकों के लिए तैयार किये गये हैं।

भाषा के सम्बन्ध मे इस बात का ध्यान बराबर रखा गया है कि वह शुद्ध होने के साथ ही साथ स्वाभाविक भी हो। इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि विद्यार्थी हिन्दी के मुहाविरों और उनके उचित प्रयोग से परिचित हो जायँ।

प्रत्येक पाठ के अन्त में दिये गये प्रश्नों के सम्बन्ध में भी अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रायः लोग अभ्यास में दिये गये प्रश्नों का महत्त्व पूर्णतया नहीं समझ पाते। वास्तव मे पाठ के अन्त मे दिये गये प्रश्नों से ही अध्यापकों को इस बात का संकेत मिलता है कि अमुक पाठ को किस प्रकार पढ़ाया जाय। अन्त में विभिन्न प्रकार के प्रश्न, अभ्यास और आदेश दिये गये हैं। आवश्यकतानुसार सहायक-सामग्री भी प्रस्तुत की गई है। कुछ प्रश्न ऐसे दिये गये हैं जिनके उत्तर से यह ज्ञात हो जायगा कि विद्यार्थी उस पाठ को किस सीमा तक समझ सके हैं। कुछ प्रश्नो से विषय की अधिक गहराई तक पहुँचने और रचना के भाव तथा भाषा सम्बन्धी विशेष सौन्दर्य से परिचित होने में सहायता मिलेगी। विद्यार्थियों में तुलनात्मक-दृष्टिकोण का विकास करने के लिए कुछ प्रश्न ऐसे भी रखे गये हैं जिनका उत्तर देते समय विद्यार्थियों को एक ही प्रकार की विभिन्न वस्तुओं और स्थितियों की तुलना करनी पडे। अभ्यास में दिये गये अनेक प्रश्न विद्यार्थियों की कल्पना-शक्ति को क्रियाशील बनाने और उसे विकसित करने में महत्त्वपूर्ण सहायता पहुँचाएँगे। विद्यार्थियों की आलोचना-बुद्धि जाग्रत करने वाले प्रश्न भी दिये गये हैं।

भाषा तथा निबन्ध रचना के सम्बन्ध में भी कुछ प्रश्न दिये गये हैं। शब्दों तथा मुहावरों का उचित प्रयोग, अपूर्ण वाक्यों का पूरा करना, पाठ से सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर छोटे-छोटे निबन्ध लिखना आदि बातों का अभ्यास भी विद्यार्थियों को पाठों के अन्त में दिये गये प्रश्नों द्वारा हो जायगा। व्याकरण सम्बन्धी ऐसे प्रश्न भी दिये गये हैं जिनसे

छात्रों को पाठों के अध्ययन के साथ ही साथ व्याकरण का भी व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो सके।

अन्त में मुझे अध्यापकों की सेवा में भी थोड़ा सा निवेदन करना है। मातृ-भाषा की शिक्षा का उद्देश्य केवल इतना ही नहीं है कि विद्यार्थी कुछ शब्दों और मुहावरों से परिचित हो जायें और उनके अर्थ जान जायँ। मातृ-भाषा की शिक्षा द्वारा हमें विद्यार्थियों में वह शक्ति विकसित करनी चाहिए जिसके द्वारा वे विचार, भावना, भाषा और शैली के सौन्दर्य से आनन्द प्राप्त करें। जहाँ गद्य के पाठों द्वारा हम विद्यार्थी को भाषा का ज्ञान कराना चाहते हैं और उनके लाभदायक जानकारी के क्षेत्र को अधिक विस्तृत करना चाहते हैं वहाँ विद्यार्थियों को काव्य का रसास्वादन कराने का मुख्य उद्देश्य यह है कि उनकी रुचि परिमार्जित हो और उनका हृदय अधिक संवेदनशील हो जाय। मातृ-भाषा की जो शिक्षा विद्यार्थी की रुचि को परिमार्जित करने उसके हृदय में साहित्य के लिए प्रेम उत्पन्न करने में असमर्थ रहती है, उसे किसी भी प्रकार सफल नहीं कहा जा सकता। इसलिए अध्यापक जहाँ विद्यार्थियों के भाषा सम्बन्धी ज्ञान की अभिवृद्धि करने का प्रयत्न करें, वहाँ इस बात का भी ध्यान रखें कि मातृ-भाषा के शिक्षा के अन्य उद्देश्य भी उसकी शिक्षा प्रणाली से पूरे होते रहें।

मैं उन लेखकों और कवियों का बहुत आभारी हूँ जिनकी रचनाओं का मैंने इन पुस्तकों में प्रयोग किया है। विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को देखते हुए कुछ रचनाओं में थोड़ा बहुत परिवर्तन भी करना पड़ा है। आशा है, लेखक गण इसके लिए मुझे क्षमा प्रदान करेंगे।

संकलनकर्ता

विषय-सूची

विषय पृष्ठ



LIST OF CLASSIFIED CONTENTS

Prose:



II. Braj Bhasha Modern Poets

रत्नाकर-रत्नावली [श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर']

III. Avadhi.

परशुराम-लक्ष्मण-संवाद [गो० तुलसीदास]

IV. Additional Khari Boli

(*a*) Narrative and Descriptive

ग्राम [डा० गोपाल शरण सिंह]

महारानी अहल्याबाई का पत्र राघोबा के नाम
[श्रीमैथिलीशरण गुप्त]

एक ग्रामीण [पं० भवानीभीख त्रिपाठी]

(*b*) Beauties of Nature

प्रभात [श्रीअयोध्यासिंह उपाध्याय]

निर्झर [श्रीरामकुमार वर्मा]

(*c*) Patriotic

हिमालय के प्रति [श्रीदिनकर]

(*d*) Devotional

विनय [पं० रामनरेश त्रिपाठी)

साहित्य-सुधा

द्वितीय भाग

१—विनय

[इस कविता के लेखक हैं, सुप्रसिद्ध कवि पं० रामनरेश त्रिपाठी। आप ग्राम-गीत संग्रहकार और सफल बाल-साहित्य लेखक हैं। आपकी भाषा विशुद्ध खड़ी बोली है।

कविता कौमुदी ७ भाग, पथिक, मिलन, स्वप्न, मानसी, आदि अनेक पुस्तकों के आप सम्पादक तथा रचयिता हैं। इस पाठ में निष्फलता, पश्चात्ताप, भय, निराशा इत्यादि की कितनी सुन्दर उपयोगिता कवि ने दिखाई है, यह मनन करने योग्य है।]

करुणामय कर कृपा खोल दो,
मेरे विमल विवेक विलोचन।
मेरे जीवन में ऋषियों का,
तप भर दो भव-भीति-विमोचन॥

आर्यों के आदर्श-मार्ग पर,
मेरा हो प्रयत्न अवलम्बित।
मेरे बहिर्जगत में मेरा,
अन्तर्जीवन हो प्रतिविम्बित॥

विघ्न समस्त करें पद-पद पर,
मेरे आत्म-तेज को जाग्रत।
निष्फलता मुझको अधिकाधिक,
करे सचेष्ट सतर्क दृढ़व्रत॥

पश्चात्ताप मार्ग दिखलावे,
भय रक्खे चौकसी निरन्तर।
करे निराशा इस जीवन को,
शान्त, स्वतन्त्र, सरल, सुचि, सुन्दर॥

मुझको निज भविष्य में हे हरि!
बना रहे विश्वास अचञ्चल।
तेरे अन्वेषण में हे प्रभु!
बीते मेरा एक-एक पल॥

हाय! कहाँ है वह दिन जब मैं,
प्रभुवर की तलाश में चलकर।
आऊँगा घर पर न लौट कर,
फिर सुगन्ध की भाँति निकलकर॥

(श्री रामनरेश त्रिपाठी)

प्रश्न

१—इस कविता में कवि ने किन-किन बातों के लिए विनय की है ?

२—बहिर्जगत में अंतर्जीवन के प्रतिबिम्बित होने से कवि का क्या तात्पर्य है ?

३—विघ्न आत्म-तेज को किस प्रकार जागृत करते हैं ?

४—करुणा और कृपा में क्या अन्तर है ?

पाठ की सहायता

करुणा—दूसरों के दुःख दूर करने की आकुलता का नाम करुणा है।

कृपा—किसी की प्रार्थना पर दुःख दूर करना कृपा है। प्रार्थी दुःख निवारणार्थ कृपा चाहता है।

अभ्यास

१—विवेक-विलोचन और भव-भीति-विमोचन का अर्थ स्पष्ट करो तथा इनकी साहित्यिक सुन्दरता पर विचार करो।

२—पश्चात्ताप की व्याख्या करो।

३—इस पाठ में आई हुई पूर्वकालिक क्रियाएँ छाँटो।

—:※:—

२—नियागरा जल-प्रपात

[बा० शिवप्रसाद गुप्त बी० ए० प्रसिद्ध दानवीर, देश-भक्त तथा विद्वान् हिन्दी लेखक, काशी-विद्यापीठ और भारत-माता-मन्दिर के संस्थापक

द्वारा लिखित इस लेख में सुन्दर मुहाविरेदार भाषा में उनकी यात्रा और निरीक्षण का वर्णन पढ़ो।

इनकी रची हुई 'पृथ्वी-प्रदक्षिणा' नामक पुस्तक हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों में है।]

आज का सारा दिन न्यूयार्क में व्यतीत कर हमने सायंकाल विख्यात नियागरा जल-प्रपात देखने के लिए प्रस्थान किया। न्यूयार्क से नियागरा प्रायः ४४० मील दूर है, जिसके लिए आठ या नौ डालर अर्थात् २४) या २७) भाड़ा लगता है। इस देश में रेल में केवल एक दरजा ही होता है जिसे फर्स्ट क्लास या पहिला दरजा कहते हैं। यहाँ रेलगाड़ियाँ लम्बी लम्बी होती हैं जिनमें दोनों ओर सुन्दर मखमली गद्देदार बैठकें होती हैं, और बीच में से आने जाने का मार्ग होता है। गाड़ी के दोनों सिरों पर बाहर से आने जाने का मार्ग होता है।

रेलगाड़ी में और हर बात का आराम व सुविधा है, किन्तु भारत के प्रथम व द्वितीय श्रेणी के यात्रियों की भाँति यहाँ प्रत्येक मनुष्य को एक एक लम्बी चौड़ी बेंच सोने को नहीं मिलती। हाँ, रात्रि में सोने को अलग गाड़ियाँ मिलती हैं जिनमें दो डालर अर्थात् ६) अधिक देने से रात-भर सोने को मिलता है। हम लोगों को चूंकि रात्रि में यात्रा करनी थी, इस कारण हमने शय्या-शकट (स्लीपिंग कार) का टिकट लिया था। यह मामूली गाड़ी की तरह है। इसमें २४ मनुष्यों के बैठने की जगह होती है। सोने



अमेरिकन रेलगाड़ी का एक डिब्बा—शैय्या-शकट (

के लिए नीचे की दो बैंचे मिलाकर पूरी शय्या बना दी जाती है। इन दोनों बेंचों के ऊपर की टॉड पर भी एक शय्या बन जाती है। रात्रि के समय इस शकट में ऊपर नीचे १२ पृथक् पृथक् कोठरियाँ बन जाती हैं। सेजों पर साफ व उत्तम गद्दे, तकिये, कम्बल, चादर इत्यादि वस्तुएँ प्रस्तुत रहती हैं। आप आनन्द से सो सकते हैं। मेज काफी लम्बी चौड़ी होती है। सोने में जरा भी तकलीफ नहीं होती।

हम लोग इसी गाड़ी में आनन्द से सोते हुए प्रातः काल बफेलो नगर पहुँचे। यहाँ से गाडी बदल कर ६ बजे नियागरा पहुँच गये। यह ४४० मील का फासला कुल बर्फ से भरा था और सर्दी खूब थी। नित्य-क्रिया के उपरान्त भोजन करके हम संसार में प्रकृति के विलक्षण रूप के दर्शनों के लिये निकल पड़े। प्रकृति की उस विलक्षण, विचित्र, महती शोभायुक्त, मनोरम, पर डरावनी मूरत की छटा के लिखने की शक्ति मेरी लेखनी में नहीं है।

हम लोग इसी नियागरा को देखने के लिये चले। किराये पर एक हिम-शकट (स्लेज-कार) किया था। उस पर चढ़ कर छागल-द्वीप (गोट-आइलेण्ड) होते हुए अमरीकन जल-प्रपात के निकट पहुँचे। यहाँ पर जल १६७ फीट ऊपर से नीचे गिरता है। जल की चद्दर १०६० फीट चौड़ी है। इस विशाल जल-राशि के इतने ऊपर से गिरने से जो कलरव हो रहा था, उससे एक विचित्र मनोमुग्ध-कारी ध्वनि निकलती थी। यह ऐसी मनोहारी प्राकृतिक तान थी, जिसके सुनने से मन नहीं भरा।

इसी जल-राशि के प्रपात से जो धूम-सदृश अन्
गिनी जल-बिन्दु-राशि उठती थी, उस पर सूर्य की
ड़ने पर एक सुन्दर इन्द्र-धनुष बन जाता था जल
नविड़ समूह पर हिम से सुसज्जित प्रकृति-देवी की जो
र अनुवृत्ताकार इन्द्र-धनुष इतना सुन्दर मुकुट-सा
क मानों वह दृश्य वहाँ से दर्शकों को हटने भी न
हुत थी। मारे ठंड के नाक-कान मानों कट कर गिरे



नियागरा जल-प्रपात

, हाथों की अँगुलियाँ ठिठुर गई थीं। ऊनी मोजे
पर भी बर्फ की ठंडक पैरों को सुन्न कर रही थी, फि
न्दर्य-दर्शन से नहीं अघाती थीं। सारा द्वीप, जहाँ
, बर्फ से भरा था। इतने वेग से गिरने वाला जल

की जमी हुई बर्फ को तोड़ने में असमर्थ था। पास के सारे वृक्ष व झाड़ियाँ बर्फ से लदी थीं। वृक्षों की पतली शाखाओं के चारों ओर बर्फ जमी हुई थी जिससे जान पड़ता था कि वे काँच के वृक्ष हैं—यह सारा द्वीप का द्वीप एक शीशे की वाटिका-सा जान पड़ता था।

अब हम कैनेडियन-प्रपात की ओर चले। यह अर्द्धचन्द्राकार प्रपात पहिले वाले से चौड़ाई में दुगने से भी अधिक है। इसकी चौड़ाई ३०१० फीट है और ऊँचाई १५६ फीट अर्थात् पहिले से केवल ११ फीट कम। यहाँ का दृश्य भी पूर्व-सा है, किन्तु प्रपात के वेग से जो जल कण उड़ते हैं, वे कुहरे की भाँति सामने के दृश्य को ढँक लेते हैं, इससे गिरते हुए जल की पूरी चादर नहीं दीख पड़ती।

यहाँ से घूमते हुए एक स्थान पर हम लोग हिम-शकट छोड़ मोटर गाड़ी पर बैठ और कैनेडियन ब्रिज पर से होते हुए कैनेडा जा पहुँचे। यह पुल सन् १८६८ ई० में बना था। यह जल-प्रपात से २२० गज नीचे बहाव की ओर बना हुआ है और लोहे के ६४० फीट लम्बे एक ताख (डाट) पर बना है। कहा जाता है कि यह ताख संसार में सब से बड़ा है। पुल की लम्बाई १२४० फीट है और ऊँचाई में यह जल की सतह से १६२ फीट है। यहाँ से हम लोग व्हर्ल-पुल रैपिड पहुँचे। यहाँ पर जल का वेग बहुत अधिक है। ऊँचे ऊँचे पहाड़ी छोरों के बीच में केवल ३०० फीट जगह है। उसी में से होकर अथाह जल-राशि के नीचे जाना होता है। इसी

कारण यहाँ वेग इतना अधिक है। पहाड़ की कगारों से प्रायः २०० फीट की गहराई पर जल बहता है। जल में बहाव तक पहुँचने के लिये लिफ्ट का प्रबन्ध है। "व्हर्ल-पुल रैपिड" को देख कर हम फिर कैनेडियन-प्रपात पर पहुँचे। यहाँ पर एक सुरंग काट कर प्रपात के पीछे जाने का मार्ग बनाया गया है। इसे देखने के लिये १।।=) का टिकट लगता है। दर्शक को मोमजामे का बना हुआ लबादा व टोपी पहनाई जाती है। इसके पश्चात् लिफ्ट द्वारा १०० फीट गहरे कुएँ में उतारा जाता है फिर कोई २०० फीट चलकर महान् जल प्रपात के ठीक पीछे पहुँच जाते हैं। सामने से घर-घर शब्द करती हुई महान् जल-राशि अत्यन्त वेग से गिरती हुई देख पड़ती है। यहाँ की जल-प्रपात की शोभा देखने के उपरान्त हम घर लौटे।

'नियागरा' शब्द 'इरोक्वाइस भाषा' से लिया गया है। यह भाषा इसी नाम की आदिम निवासियों की एक जाति की थी, जिसे यूरोपवासी लुटेरों ने नष्टप्राय कर डाला। नियागरा का अर्थ है 'जल गरजाने-वाला'। यहाँ के पुराने निवासी अपनी भिन्न-भिन्न जातियों का नाम करण भी इस भाँति किया करते थे।

यह नियागरा नदी अपनी विशाल जल-राशि के प्रवाह व विचित्र मनोहारी दृश्यों के कारण तथा प्राचीन इतिहास व जन-श्रुतियों की दृष्टि से भी संसार में एक विलक्षण एवं सब से अपूर्व नदी है। लक्ष्मण झूले पर बैठने से गङ्गा के कलरव का जो प्रभाव हिन्दुओं के हृदय पर पड़ता है, उसी प्रकार का प्रभाव

सहृदय देशी आदमियों पर नियागरा के शब्द से भी अवश्य पड़ता होगा।

यह नदी कुल ३४ मील लम्बी है। ईरी ह्रद से निकल कर यह ओन्टारियो ह्रद पर समाप्त हो जाती है। इसी ३४ मील की यात्रा में इसे ३३६ फ़ीट नीचे गिरना होता है। प्रति मिनट में इस प्रपात से एक करोड़ पचास लाख घन-फ़ीट जल ऊपर के ह्रदों से नीचे आता है। इतने पानी के गिरने से पचास लाख घोड़ों की शक्ति उत्पन्न होती है। इस शक्ति-भण्डार में से केवल पाँच लाख घोड़ों की शक्ति से कार्य लेने का प्रबन्ध हो सका है।

संसार की विचित्र गति है। भिन्न-भिन्न जातियों के हृदय पर प्राकृतिक वस्तुओं का भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है। भारतवर्ष में व पुराने देशों में जहाँ कहीं प्रकृति के ऐसे विचित्र रूप का दर्शन होता था, वहाँ तीर्थ स्थान स्थापित कर यात्राएँ व मेले हुआ करते थे। प्रतिवर्ष नर-नारियों का समूह दूर देशों से आकर यहाँ प्रकृति-देवी की सुन्दरता को देख ईश्वर के सर्वव्यापी रूप का ध्यान कर चित्त को प्रमुदित किया करता था। किन्तु आधुनिक समय में ऐसे स्थानों में अनेक आमोद-प्रमोद की सामग्री एकत्र की जाती है।

यहाँ नियागरा पर भी प्राचीन समय में देशी लोगों के अभ्युदय काल में बड़ा मेला लगता था। दूर-दूर से यात्री आ कर यहाँ एकत्रित होते थे और नियागरा देव को बलि प्रदान करते थे।

देशी चाल के अनुसार एक तरणी में नाना प्रकार के कन्द-मूल-फल रखे जाते थे। इसके पश्चात् जाति की एक परम-सुन्दरी बाला अपने को सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर इस तरणी पर चढ़ नियागरा जल-प्रपात में गिर जाती थी। यही बलि-प्रदान का ढंग था। इस संबंध में एक बड़ी मर्मभेदी जन-श्रुति प्रचलित है। एक समय किसी मुखिया के एक षोडशवर्षीया सुन्दरी कन्या थी। मुखिया की यही जीवनाधार थी। इसी का मुख देख कर वह अपने जीवन के बचे-खुचे समय को व्यतीत करता था। एक साल इसी सुन्दरी की पारी बलिदान के लिए आई। पिता इस दुःख को अपनी वीरता के गर्व में पी गया, किन्तु हृदय की मसोस को मस्तिष्क नहीं सँभाल सका। समय आ गया। सुन्दरी तरणी पर आरूढ़ हो पूर्ण चन्द्रमा की ज्योति में चमकती हुई प्रपात की ओर तेजी से बह चली। इतने ही में एक दूसरी नौका देख पड़ी और वह वेग से पहिली तरणी के समीप पहुँच गई, इस पर युवती का वीर पिता था। एक क्षण के लिये दोनों की चार आँखें हुई, और क्षण-मात्र में दोनों पिता पुत्री अथाह जल-राशि में लीन हो गये। यहाँ के आदिम निवासियों का यह विश्वास था कि इस प्रकार बलिदान की जाने वाली सुन्दरी की आत्मा नियागरा देव की सेवा में विचरती है।

आज हम लोग रेड इण्डियनों (यहाँ के आदिम निवासियों) को, जो अब नष्टप्राय हो गये हैं, देखने चले। नियागरा से सात आठ मील के फासले पर इन्हीं की एक बस्ती है।



रेड इण्डियन

तीन घंटे निबिड़ हिमवन में जाने के उपरान्त टोमसन महाशय के घर पर जा पहुँचे। ये लोग अब ईसाई हो गये हैं। इन लोगों की आकृति सुन्दर, रंग गेहुँआ, तथा आँखें व बाल काले होते हैं। आँखें भौंह के बराबर होती हैं व पलकें खिंची हुई होती हैं। बस, यही इनकी और भारतवासियों की आकृति में अन्तर है। इनकी पुरानी कारीगरी के नमूनों के देखने से जान पड़ता है कि यह जाति सभ्य है। ये लोग लिखना-पढ़ना भी जानते थे।

दूसरे दिन दोपहर को अलबनी के लिये प्रस्थान किया। रात्रि को एक बजे अलबनी पहुँचे। हैम्पटन होटल में पहुँच कर रात्रि में विश्राम किया।

प्रश्न

१—नियागरा की रेलगाड़ियों के विषय में तुम क्या जानते हो ?

२—रेड इण्डियनों और भारतवासियों की आकृति में क्या अन्तर है ?

३—कैनेडियन जल प्रपात की गिरते हुए जल की पूरी चादर क्यों नहीं दिखाई पड़ती ?

४—'नियागरा' किस भाषा का शब्द है ? इसका क्या अर्थ है ?

५—नियागरा-देव को बलि देने के सम्बन्ध में कौनसी जन-श्रुति प्रसिद्ध है ?

अभ्यास

१—नियागरा जल प्रपात का संक्षेप में वर्णन करो।

२—नियागरा नदी संसार में विलक्षण और सबसे अपूर्व नदी क्यों मानी गई है? इसके दृश्य का चित्रण करो।

३—"भिन्न-भिन्न जातियों के हृदय पर प्राकृतिक वस्तुओं का भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है"—उदाहरण देकर समझाओ।

४—नियागरा देव को बलि-प्रदान करने की प्रथा का वर्णन करो। यदि इस सम्बन्ध में कोई जन श्रुति प्रचलित हो तो उसे भी बताओ।

५—अर्थ बताओ और अपने वाक्यों में इनका प्रयोग करो—
प्रस्थान, प्रमुदित, प्रस्तुत, अभ्युदय, निर्दिष्ट, जन-श्रुति, मर्मभेदी।

६—रिक्त स्थानों की पूर्ति करो—

(अ) रविवार का सारा दिन लखनऊ में व्यतीत करके हमने इलाहाबाद के लिए .... किया।

(आ) नियागरा की बलि-प्रथा के सम्बन्ध में एक .... प्रचलित है।

(इ) उसके .... वाक्यों को सुनकर उसे बड़ा दुःख हुआ।

—:ॐ:—

७—बंबई से पोर्ट सईद

[रायबहादुर पं॰ श्रीनारायण चतुर्वेदी की विलायत-यात्रा का वर्णन पत्रों के रूप में प्रकाशित हुआ करता था। उन्हीं पत्रों में से यह संकलित है। जहाज़ी यात्रियों को क्या क्या कष्ट अथवा आनंद मिलता है, इसका

रोचक वर्णन इस पाठ मे पढ़ो। देश-विदेश की जलवायु के कारण रहन सहन मे कैसा परिवर्तन हो जाता है इस पर भी विचार करो।]

बबई छोड़ने के दो दिन बाद गरमी बहुत बढ़ गई थी। बिजली का पंखा रहने पर भी केबिन में सोना कठिन था। इस-लिए बहुत से लोग रात को डेक पर ही सोया करते थे। मैं भी गरमी से परेशान था। अतएव जब तक हमारा जहाज प्रायः आधे भूमध्य सागर में नहीं पहुँच गया, तब तक मैं भी डेक पर ही सोता रहा।

अरब सागर पहले दो-तीन दिन तो बहुत ठीक रहा और हमारा जहाज बड़ी अच्छी तरह से चलता रहा, किन्तु तीसरे दिन समुद्र में जोर की लहरें उठने लगीं। उनके कारण बहुत से लोगों को समुद्री बीमारी हो गई। समुद्री बीमारी से सिर में चक्कर (घुमरी) आने लगते हैं। इस बीमारी के कारण बहुत से लोग कैबिनों में ही पड़े रहे। कैबिन में लेटे रहने से बहुत कुछ आराम मिलता है।

यह आशा की जाती थी कि हमारा जहाज चार बजे तक अदन पहुँच जायगा; किन्तु कहीं सूर्यास्त होते होते उसने लंगर डाला। अदन में बंदरगाह नहीं है। इसलिए जहाज किनारे से कुछ दूर एक सीमा के आगे नहीं जा सकते क्योंकि किनारे पर जल गहरा नहीं है। इस सीमा को स्टीमर पाइंट कहते हैं। जहाज ठहरते ही बहुत सी अरबी नावें आकर जहाज के पास लग गयीं। उनमे बैठकर लोग शहर देखने के लिए जाने लगे।

ये नावें बहुत छोटी होती हैं। हम लोग किनारे पर उतरे। किनारे पर आने और जाने के लिए नावें सरकारी होती हैं, और किराया भी सरकारी दर से देना पड़ता है। अदन बंबई प्रान्त में है अतएव अभी हम भारत ही की सीमा में थे। किनारे पर उतरते ही हम लोग फाटक के बाहर आये। यह एक अर्ध गोलाकार स्थान है। इसे क्रिसेंट (अर्द्ध चंद्र) कहते हैं। इस भाग को देखने से यह नहीं मालूम होता है कि हम लोग अरब देश में हैं।

शहर बंदर के कुछ दूर पहाड़ियों के पीछे बसा है। बंदर से शहर तक पक्की सड़क चली गयी है। कुछ दूर, प्रायः २-३ मील तक यह समुद्र के किनारे किनारे गयी है। इस पर संध्या के समय गरमी में मोटर पर जाना बहुत सुखद मालूम पड़ा। समुद्र के किनारे से यह सड़क आगे चलकर एकदम मुड़ जाती है और पहाड़ों पर चढ़ना शुरू होता है। जिस प्रकार अजमेर और पुष्कर के बीच में सुरंगों से पहाड़ उड़ाकर रास्ता बनाया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी पहाड़ी काट कर रास्ता निकाला गया है। कहीं कहीं पर चढ़ाई बहुत ज्यादा है। रात्रि के समय जगह-जगह पुलीस का पहरा रहता है। इसके दो कारण हैं एक तो मोटर आदि की गति का ध्यान रखना, दूसरे बद्दुओं से रक्षा करना।

प्रायः आध घंटे में हम अदन की बस्ती में पहुँच गए। अदन की बस्ती ऐसी समझिए जैसी कोई पुरानी हिन्दुस्तानी बस्ती। प्रधान बाजार में सराय का कुछ दृश्य भी दिखलायी पड़ता था। बस, यहीं से पूर्व का अंत और पश्चिम का प्रारंभ समझिए।

अदन के बाजार में दूकानें भी वही बनियों की दूकानों की तरह थीं। रोटी, फल, खजूर आदि बिक रहे थे। हमें जो सामान लेना था, वह वहाँ नहीं मिला। पता लगा कि क्रिसेंट के पीछे कुछ मारवाड़ियों की दूकाने भी हैं उनके यहाँ सामान मिलेगा। अदन में जहाज केवल तीन चार घंटे ठहरता है। इतनी दूर वापस जाना और अभी सामान खरीदना था।

हम लोग मारवाड़ी दूकानदार की खोज में चले। यहाँ इन उद्योगी लोगों ने अपना अच्छा समुदाय बना रखा है। इन लोगों के कारण अदन में भी हिन्दुस्तानी आराम मिल जाता है। ये लोग कपड़े और परचून की दूकानें किये हैं। और दूसरे धन्धे भी करते हैं। जहाज़ से उतरते ही क्रिसेंट के पीछे जो बस्ती है, वहीं इन हिन्दुस्तानी भाइयों की दूकाने हैं।

प्रातः १० बजे जहाज ने लंगर उठाया। दूसरे दिन उसने लाल-सागर में प्रवेश किया। नक़शे में लाल सागर बहुत पतला मालूम पड़ता है, किन्तु वास्तव में जहाज के ऊपर से किनारा नहीं दिखलायी पड़ता था। इसका नाम भी लाल-सागर सार्थक नहीं है। समुद्र का जल यहाँ भी बहुत नीला है। हाँ, थोड़ी थोड़ी दूर पर समुद्र-तट से सिर निकाले हुए रक्तवर्ण-सी झुलसी हुई चट्टानें जरूर दिखलायी पड़ जाती थीं। बाबुल मंदब में प्रवेश करने के बाद अफ्रीका का किनारा दिखलायी पड़ने लगा। वह भी उतना ही झुलसा हुआ था, जितना कि अरब के पहाड़। लाल-

सागर में बड़ी गरमी थी यहाँ बहुत से बाबुओं को एक बार फिर धोती और कुरते की याद आयी।

तीसरे दिन सन्ध्या को स्मोकिंग रूम में नोटिस लगा कि अगले दिन सुबह हम लोग स्वेज़ पहुँच जायँगे। किन्तु यह जान कर खेद हुआ कि वहाँ जहाज़ नहीं ठहरेगा। सीधा पोर्ट सईद जाकर ठहरेगा। यहाँ से मिश्र की राजधानी क़ाहिरा (कायरो) को रेल गयी है। स्वेज़ से क़ाहिरा ३-४ घंटे में पहुँच सकते हैं। क़ाहिरा से पोर्ट सईद को भी रेल गयी है. और क़ाहिरा से वहाँ पहुँचने में भी उतना ही समय लगता है। इधर जहाज़ को स्वेज़ से सईद बन्दर तक पहुँचने में प्रायः १२ घंटे लगते हैं। अतएव यह इरादा हुआ कि स्वेज़ में उतर कर क़ाहिरा चले जायँ और वहाँ ५-६ घंटे ठहर कर नगर को देख लें तथा नील नदी के दर्शन करके संध्या तक पोर्ट सईद पहुँच जायँगे। किन्तु कोई साथी नहीं मिला।

सबेरे ५ बजे ही जहाज़ स्वेज़ में पहुँच गया। उसके लंगर डालते ही बहुत से मिश्री सौदागर अपनी अपनी नावों में बैठ कर जहाज़ के पास आ गए और थोड़ी ही देर में अपना अपना माल-मसाला लिए हुए ऊपर चढ़ आए। तसवीरें, अख़बार, अंगूर, खजूर, रूमाल तरह तरह की मालाएँ, इत्यादि ये लोग बेचते थे। फल बहुत सस्ते तथा अच्छे थे। इतने अच्छे खजूर तो मैंने अब तक नहीं खाए थे। स्वाद में ये अंगूर से कम न थे। अंगूरों का क्या कहना बहुत ही अच्छे थे। इन लोगों ने बहुत

मोल-तोल करना पड़ता है, और अन्य फेरी वालों की तरह ग्राहकों को ठगना इनकी व्यापारिक नीति में अशिष्ट नहीं समझा जाता।

स्वेज़ नगर बिलकुल आधुनिक है। यह और पोर्ट सईद स्वेज़ नहर के शिशु हैं। लाल सागर का उत्तरीय सिरा बहुत सकरा है। इसे स्वेज़ की खाड़ी कहते हैं। स्वेज़ खाड़ी और भूमध्य सागर के बीच रेगिस्तान है और नहर के बनने के पहले अनादि काल से सभ्य अफ्रीका और एशिया के व्यापारिक तथा राजनीतिक संबंध का यही स्वेज का स्थल-डमरू मुख्य मार्ग था। किन्तु जहाज के मार्ग में यह डमरूमध्य कंटक था। अतएव भूमध्य सागर को लाल सागर में मिलाने के लिए इस नहर का आयोजन हुआ। नहर का बनाने वाला एक फ्रांसीसी इंजीनियर था। इसका नाम लासेप्स था। स्वेज की नहर के लिए ही एक कंपनी खड़ी की गई थी और अब भी उसका कारबार जारी है। पहले उसमें अंग्रेजों के हिस्से कम थे। किन्तु मिस्र के खदीव ने अपने हिस्से उन्हें दे दिए। तब से अंग्रेजों के हिस्से अधिक हो गए हैं। अब यह कंपनी वास्तव में अंग्रेजी कंपनी ही है।

स्वेज़ नहर यद्यपि छोटा है, तथापि बड़ा सुन्दर है। जहाज़ से उसके सफेद मकान बहुत भले मालूम पड़ते हैं। हमारे जहाज ने धीरे धीरे नहर में प्रवेश किया। जैसे जल में बतख के तैरने से आवाज़ नहीं होती, वैसे ही जहाज़ के इंजिन का शब्द बन्द हो गया। बड़ी शान्ति के साथ मंदगति से जहाज़ नहर में चलने

लगा। नहर के किनारे किनारे भिन्न भिन्न देशों के 'कांसलेट' तथा अन्य इमारते हैं। जहाज़ से इन इमारतों की क़तार बहुत मनोहर मालूम पड़ती है।

नहर प्रायः १०० गज चौड़ी है और इतनी गहरी है कि उसमें बड़े से बड़े जहाज जा सकते हैं। स्वेज के स्थल-डमरू-मध्य में कई झीलें हैं। नहर के द्वारा ये झीलें मिला दी गई हैं। नहर इतनी चौड़ी नहीं है कि इसमें दो बड़े जहाज एक साथ जा सकें। इस लिए जगह जगह ऐसे स्थान बने हैं जहाँ एक जहाज किनारे लग कर खड़ा हो सके और दूसरा जहाज निकल जाय।

हम ऊपर कह आए हैं कि यह नहर रेगिस्तान होकर गयी है। इससे किनारे की बालू गिर कर नहर की सतह में बैठ जाती है। अतएव उसकी गहराई कम हो जाती है। इस बालू के निकालने और नहर को काफी गहरा रखने के लिए छोटे छोटे जहाज काम किया करते हैं। नहर के किनारे किनारे स्वेज से पोर्ट सईद तक रेल की सड़क भी गयी है। उसमें जगह जगह पर स्टेशन बने हैं जिनका एक रुख नहर की ओर और दूसरा रेल की ओर है। इन स्टेशनों में नहर के कर्मचारी रहते हैं और जहाजों के आने जाने की देख रेख किया करते हैं।

जहाज़ से आस पास का दृश्य बड़ा ही विचित्र मालूम पड़ता है। अब तक इतने दिनों चारो ओर जल ही जल दिखलायी पड़ता था, किन्तु अब चारों ओर बालू ही बालू दृष्टि में आ रही

थी। अस्तु, पानी देखते देखते इतना जी घबरा उठता है कि लोगों को इस बालू में भी आनंद आ जाता है। वास्तव में किनारे का दृश्य, पेड़ों, रेलवे लाइन तथा बँगलों के कारण सुहावना भी है।

सईद एक नया बन्दरगाह है। स्वेज की तरह यह भी नहर के कारण आबाद है। नहर के किनारे किनारे बड़ी बड़ी दूकानें हैं। रात को बिजली की रोशनी में जहाज़ के ऊपर से किनारे का दृश्य बहुत अच्छा मालूम पड़ता है। यहाँ भी अदन की तरह नावों में बैठ कर किनारे जाना पड़ता है। पर बाज बाज नाव वाले पूरे ठग हैं। ये लोग नाव पर पैसा माँगते हैं। यात्री यह समझ कर कि ये उतराई माँग रहे हैं, उन्हें दे देते हैं। पर किनारे पर उतर कर यात्रियों को फिर से उतराई देनी पड़ती है; क्योंकि ये नावें पोर्ट की हैं। नए लोग अक्सर ठग जाते हैं।

प्रश्न

१—समुद्री बीमारी में क्या दशा होती है? उसके कष्ट से बचने के लिए लोग क्या करते हैं?

२—स्वेज़ नहर की कंपनी अंग्रेज़ों के हाथ में कैसे आई?

अभ्यास

१—स्वेज नहर का वर्णन करो।

२—कलकत्ते से रंगून तक की यात्रा का वर्णन अपने शब्दों में करो।

३—इस पाठ को पढ़ कर क्या तुम्हारी जल-यात्रा करने की इच्छा होती है? कारण सहित उत्तर लिखो।

४—रसखान के सवैये

[कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी कविताओं में रसखान की रचनाओं का अच्छा स्थान है। मुसलमान होते हुए इन्होंने कितनी भक्तिभावना से कविता की है, यह तुम्हें इनके सवैयों के पढ़ने से स्पष्ट हो जायगा। इनके 'प्रेम-वाटिका', और 'सुजान रसखान' ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।]

[१]

सेस महेस गनेस दिनेस,
सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड,
अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रटैं,
पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ,
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

[२]

या लकुटी अरु कामरिया पर,
राज तिहूँपुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौ निधि को सुख,
नन्द की गाइ चराइ बिसारौं॥
रसखानि कबौं इन आँखिन सों,
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।

कोटिक हौं कलधौत के धाम,
करील की कुंजन ऊपर वारौं ॥

[३]

मानुष हौं तो वही रसखानि,
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरौ,
चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तौ वही गिरि को,
जो धर्यौ कर छत्र पुरन्दर कारन ।
जो खग हौं तो बसेरो करौं,
मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन ॥

[४]

धूर भरे अति सोभित स्याम जू,
तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग-
पैंजनी बाजती, पीरी कछोटी ॥
वा छवि को रसखानि बिलोकत,
वारत काम कलानिधि कोटी ।
काग के भाग कहा कहिये हरि-
हाथ सों लै गयो माखन रोटी ॥

[५]

ब्रह्म में ढूँढ्यो पुरानन गानन,
वेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितू,
वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत हेरत हारि पर्यौ रसखानि,
बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुर्यो वह कुञ्ज कुटीर में,
बैठो पलोटत राधिका पायन॥

[६]

बैन वही उनको गुन गाइ,
औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात सरै,
अरु पाँइ वही जु वही अनुजानी॥
जान वही उन प्रान के संग,
औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यों रसखानि वही रस-खानि,
जु है रस-खानि सो है रस-खानी॥

प्रश्न

१—रसखानि के विषय में तुम क्या जानते हो इन्हें कृ
किस प्रकार प्राप्त हुई?



२—दूसरे छन्द के लिए तुम कौन सा शीर्षक पसंद करते हो ?

३—कवि ने ब्रह्म को कहाँ-कहाँ खोजा वह उसे कहाँ मिला ?

४—कवि ने किन अंगों को सार्थक माना है ? और क्यों ?

अभ्यास

१—शुद्ध रूप बताओ:—सेस, महेस, गनेस, दिनेस, सुक, सुरेस, पसु, स्याम, रिचा, और सुभायन ।

२—अर्थ कहो—अनादि, अखण्ड, अछेद, आठहुसिद्धि और नवौ-निधि, कलधौत के धाम, कलानिधि और पुरानन ।

३—छठे छन्द के अन्तिम दो चरणों में 'रसखानि' शब्द बार-बार आया है—उसके भिन्न अर्थ समझाओ ।

४—रसखानि कवि ने ईश्वर की विचित्रता के समर्थन में क्या-क्या प्रमाण दिये हैं ।

आदेश

रसखानि की कविताओं में शुद्ध ब्रज-भाषा की बहार देखो । अपने अध्यापक से शुद्ध ब्रज-भाषा लिखने वाले अन्य कवियों के नाम पूछो ।

—:o:—

५—कर्ण और अर्जुन का युद्ध

[हिन्दी के यशस्वी कवि स्वर्गीय शंकर जी के सुपुत्र, पत्रकार-कला के आचार्य, सहृदय विद्वान् एवं प्रसिद्ध लेखक श्री हरिशंकर शर्मा इस पाठ के लेखक हैं ।

आपकी कुछ कृतियाँ ये हैं :—

चिड़ियाघर, बिजड़ापोल, गौरवगाथा, जीवन-ज्योति, स्वर्गीय सुमन, विचित्र विज्ञान, मेवाड़ महिमा, महकते मोती।

इस पाठ में कर्ण-अर्जुन का विकट युद्ध, कर्ण का परशुराम से ब्रह्मास्त्र प्राप्त करना तथा कर्ण पर शल्य के वचनों का प्रभाव देखो।]

आचार्य द्रोण के स्वर्ग सिधार जाने पर, कौरव-सेना की बागडोर कर्ण के हाथ में आई। सेनापति बनकर कर्ण अपना अतुल पराक्रम दिखाने लगा। कुछ ही काल में उसने पाण्डव-सेना के अनेक वीरों का संहार कर उसे अशक्त बना दिया।

एक दिन कर्ण रथ में बैठा, अपने सैनिकों को उत्तेजित करता हुआ घूम रहा था। उसने वीरों को सम्बोधन कर कहा—"हे वीरो! आज जो कोई वीरेश्वर अर्जुन और कृष्ण का पता लगायेगा, उसे मुँह-माँगा पारितोषिक दिया जायगा।"

कर्ण की ये गर्व-भरी बातें मद्रराज शल्य से न सुनी गईं। वह उसका उपहास करता हुआ कहने लगा—"हे दासी-पुत्र! कृष्ण और अर्जुन का पता पाने के लिए तुम्हें कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ेगा। तुम तो मुँह-माँगा पुरस्कार देने की घोषणा कर रहे हो, पर मैं तुम्हें वैसे ही कृष्ण और अर्जुन के दर्शन करा दूँगा। तुम जो इन दोनों के वध करने का विचार कर रहे हो वह तुम्हारी कोरी कल्पना-मात्र है। अर्जुन का संहार करना लोहे के चने चबाना है। क्या कभी सियारों ने भी सिंह को पछाड़ा है? तुम तो असम्भव कल्पनायें कर रहे हो। वह तुम्हारे समान क्षुद्र

व्यक्ति के लिए ही शोभा-जनक हो सकती है।" शल्य के वाग्बाणों से व्याकुल हो कर्ण कहने लगा—"हे मद्रराज! गुणग्राही व्यक्ति ही गुणों का आदर कर सकता है। तुम कर्ण के गुणों को क्या जानो? अर्जुन और श्रीकृष्ण की योग्यता, शक्ति और विद्या के सम्बन्ध में जितना मुझे ज्ञान है उतना तुमको नहीं। मैंने अर्जुन और अपने बल-विक्रम को तौल कर ही उससे लोहा लिया है। तुम थोड़ी देर और बातें बना लो। अर्जुन और कृष्ण का वध करके फिर तुम्हारी भी खबर ली जायगी।" शल्य पर कर्ण की इन गीदड़-भभकियों का कुछ भी असर न हुआ और वह बार-बार उसे चिढ़ाने तथा हतोत्साह करने के लिए अनेक व्यंग्य-वाक्य कहने लगा। शल्य के धिक्कारने और चिढ़ाने से कर्ण क्रोधान्ध हो गया। मारे क्रोध के उसका शरीर काँपने लगा तथा ओंठ फरकने लगे। वह सिंह के समान गरजता हुआ बोला—"हे शल्य, तुम्हारी ये नीचतापूर्ण बातें मुझे युद्ध से कदापि नहीं डरा सकतीं। याद रक्खो, कर्ण किसी से डरने के लिए जगत् में नहीं जन्मा। वह तो अपने प्रबल पराक्रम द्वारा शत्रुओं का मुँह तोड़ने और उन पर विजय पाने के लिए संसार में आया है। मूर्खराज, तुम्हारी बातें सुनकर क्रोध तो ऐसा आता है कि पहले तुम्हीं को यम-धाम भेज दूँ, परन्तु दुर्योधन की हित-कामना और अपनी प्रतिज्ञा भंग होने के भय से तुम्हें दण्ड नहीं देता। तुम तो क्या यदि तुम जैसे हज़ार शल्य भी अर्जुन की सहायता करें, तो भी वह नहीं बच सकता।"

इसके अनन्तर युद्ध आरम्भ हुआ। कर्ण के साथ लड़ने के लिए अर्जुन तैयार हुआ, परन्तु संयोगवश उसे उसी समय संसप्तकों से युद्ध करने जाना पड़ा। पीछे कर्ण ने अपने दिव्य बाणों की वर्षा कर पाण्डव-सेना में प्रलय-कांड उपस्थित कर दिया। उस समय भीम, धृष्टद्युम्न आदि महारथी भी कर्ण से अपनी सेना न बचा सके। सहस्रों सैनिक और सैकड़ों योधा कर्ण के बाणों से आहत होकर स्वर्ग सिधार गये। पाण्डवों की फौज विकल हो हाहाकार करने लगी। इतने ही में अर्जुन संसप्तकों को परास्त करके लौटा। उसने दूर ही से हाथी के चिन्ह वाली कर्ण की ध्वजा देखी तथा अपनी सेना की ओर से आते हुए आर्तनाद को सुना। अर्जुन ने तुरन्त कर्ण के सामने अपना रथ ले चलने को कहा। बात की बात में अर्जुन का रथ कर्ण के आगे आ गया।

इस समय महात्मा वासुदेव ने अर्जुन के बल-विक्रम की खूब प्रशंसा कर के उसे उत्साहित किया। कृष्ण की बातों से उत्तेजित हो अर्जुन निर्भीक भाव से कौरव-सेना की ओर बढ़ा और अपने गाण्डीव से बाण वर्षा कर शत्रुओं को क्षत-विक्षत करने लगा। इसी समय भीमसेन ने दुःशासन का बध कर अपनी पूर्व प्रतिज्ञानुसार उसका रक्त-पान किया। दुःशासन की मृत्यु हो जाने से कर्ण कुछ काल के लिए अधीर हो गया, पर शीघ्र ही सावधान हो फिर घोर युद्ध करने लगा।

इतने ही में अर्जुन रथ बढ़ाता हुआ कर्ण के सामने पहुँचा।

अर्जुन को देखते ही कर्ण का क्रोध भभक उठा। शत्रु को सामने देख कर्ण भूखे भेड़िये की भाँति उस पर टूट पड़ा। अर्जुन तो पहिले ही से सावधान था। दोनों ओर से बाणों की झड़ी लग गई। आकाश-मण्डल में इतने बाण छा गये कि उनसे सूर्य छिप गया। दोनों ओर की सेनाओं में रुधिर की धारा बहने लगी। कर्ण-अर्जुन का युद्ध देखने के लिए देव-दानव सभी अपने अपने विमानों में बैठ आकाश में आ डटे।

युद्ध करते-करते कर्ण ने अपने सारथी शल्य से पूछा—"हे मद्रेश्वर, यदि अर्जुन ने मेरा वध कर दिया तो तुम क्या करोगे?" शल्य ने उत्तर दिया—"यदि ऐसा हुआ तो मैं कृष्ण और अर्जुन दोनों का विनाश किये बिना न रहूँगा।" उधर अर्जुन ने भी अपने सारथी कृष्ण से यही प्रश्न पूछा, तो वे बोले, "हे धनञ्जय, यह असम्भव बात तुम क्यों कहते हो? चाहे सूर्य पश्चिम में उदय होने लगे, पहाड़ आकाश में उड़ने लगे, अग्नि शीतल हो जाय और जल जलने लगे तब भी कर्ण तुम पर विजय नहीं पा सकता। कृष्ण भगवान् की बात सुनकर अर्जुन परम प्रसन्न हो दूने उत्साह से बाण बरसाने लगा। दोनों वीर एक दूसरे पर वज्रवत् बाणों से आक्रमण कर रहे थे। उभय पक्ष के सैनिक अपने सेनापतियों की प्रशंसा कर उनका उत्साह बढ़ा रहे थे। दोनों महारथियों के शरीरों से रुधिर-धारायें प्रवाहित थीं।

जब कर्ण ने साधारण बाणों का विशेष प्रभाव न देखा तो

वह दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने लगा। अर्जुन ने भी दिव्यास्त्रों द्वारा उत्तर देना शुरू किया। एक आग्नेयास्त्र छोड़ कर अग्नि उत्पन्न करता तो दूसरा वारुणास्त्र छोड़ जल बरसाने लगता। कर्ण ने पर्जन्यास्त्र छोड़ प्रलय-काल के-से भीषण बादल उत्पन्न कर दिये, तो अर्जुन ने वायव्यास्त्र से भयङ्कर आँधी चला दी, जिससे वह मेघ-माला क्षण-भर में छिन्न-भिन्न हो गई। इस भाँति दोनों योधा अपना अपना रण-कौशल दिखाते हुए लड़ने लगे। उनके दिव्य बाणों से नभ-मण्डल आच्छादित हो गया, पहाड़ टूट कर गिरने लगे और पृथ्वी काँपने लगी। दोनों के धनुषों की टङ्कार से आकाश गूँज उठा।

एक बार कर्ण ने क्रुद्ध होकर कान तक तान सर्प-बाण का प्रयोग किया। उक्त भयंकर बाण को अपनी ओर आता देख कर महात्मा कृष्ण ने रथ के घोड़ों को बैठा दिया, जिससे रथ का अग्रभाग कुछ नीचा हो जाने से कर्ण का निशाना चूक गया और बाण अर्जुन के कंठ को न छूकर उसका मुकुट छूता हुआ निकल गया। कृष्ण के कौशल से अर्जुन तो बच गया; पर उसका मुकुट चूर-चूर हो गया। इसी समय अर्जुन ने भी ऐसा बाण मारा जो कर्ण की छाती में लगा। इस प्रकार अर्जुन ने एक ही बाण से कर्ण का कवच छिन्न-भिन्न कर उसका मर्म-स्थल भेद दिया, जिसके आघात से वह मूर्च्छित हो गया।

कर्ण को मूर्च्छित देख नियमानुसार अर्जुन ने उस पर प्रहार



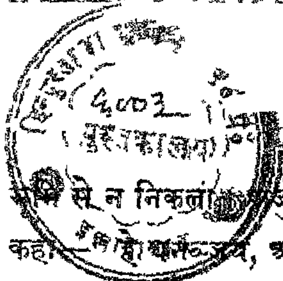
करना बन्द कर दिया। इस पर महात्मा कृष्ण कहने लगे—" हे अर्जुन, तुमने बाण चलाना क्यों बन्द कर दिया? बुद्धिमान् मनुष्य को शत्रु-संघार करने में देर नहीं करनी चाहिए, यही नीति-शास्त्र का मत है।" कृष्ण के आज्ञानुसार अर्जुन धनुष सँभाल कर फिर बाण चलाने के लिए उद्यत हुआ। इसी समय कर्ण की भी मूर्छा दूर हुई और वह भी अर्जुन पर बाण बरसाने लगा। इस समय कर्ण ने बहुत चाहा कि महात्मा परशुराम से प्राप्त किए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करे; परन्तु परशुराम के ही शाप-वश उसे इस समय ब्रह्मास्त्र चलाने की क्रिया याद न रही। कर्ण दैव को कोसता हुआ दूसरे बाणों द्वारा ही अर्जुन के बाणों की काट करने लगा। इस समय उसके रथ का पहिया पृथ्वी में प्रविष्ट हो चुका था। उसको अपना मृत्यु-समय निकट दिखाई देने लगा। वह रथ से उतरा और पहिया निकालने लगा। उधर कृष्ण के आदेशानुसार अर्जुन ने अपनी बाण-वर्षा बराबर जारी रक्खी।

अर्जुन को इस प्रकार शस्त्र-प्रहार करते देख कर्ण बोला—" हे धनञ्जय! तुम युद्ध के नियमों का उल्लंघन कर यह अनुचित करते हो। जब मैं रथ से उतर, युद्ध से विरत हो, दूसरे काम में लगा हूँ, तो तुम्हें मेरे ऊपर प्रहार नहीं करना चाहिए। तुम्हारे जैसे व्यक्ति के लिए यह अधर्माचरण शोभा नहीं देता। मैं तुम से दया भिक्षा नहीं माँगता, और न किसी बात से डरता ही हूँ। केवल रथ ठीक करने के लिए युद्ध स्थगित कराना चाहता हूँ। तुम वीर

हो, तुमने उत्तम कुल में जन्म पाया है। अतः इस भाँति अधर्म करना तुम्हारे लिए लज्जा की बात है।"

कर्ण का कथन सुन वासुदेव बोले—"हे कर्ण, आज जब अपने ऊपर बीती है तब धर्म याद आया है। जिस दिन दुर्योधन ने पाण्डवों को लाक्षागृह में जला देने का षड्यन्त्र रचा था उस दिन तुम्हारा यह धर्म कहाँ गया था? जब कौरवों ने कपट-पूर्वक जुआ खेला, पाण्डवों का सर्वस्व ठग लिया, तब तुम्हारी धार्मिकता कहाँ सो रही थी? निरपराध सती पाञ्चाली को नग्न करते समय तुम्हारी यह धर्म-भावना किस कुएँ में पड़ी थी? अकेले वीर अभिमन्यु को तुम सब ने मिलकर अन्याय-पूर्वक मारा, उस समय एक बार भी धर्म याद न आया? अब अपनी बार धर्म की दुहाई करते हो! हे राधेय, शठ के प्रति शठता करने में पाप नहीं, यह नीति में स्पष्ट लिखा है।"

महावीर कर्ण कृष्ण की उपर्युक्त बातें सुन लज्जित हो भूमि की ओर देखने लगा। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला। अंत में विवश हो कर्ण ने रथ का ध्यान छोड़ दिया और वह फिर धनुष सँभाल कर अर्जुन के प्रहारों का उत्तर देने लगा। इस समय कर्ण अपनी पूरी शक्ति और योग्यता से लड़ा। थोड़ी देर तक दोनों वीरों में फिर भयंकर युद्ध हुआ। इसी समय कर्ण का एक बाण अर्जुन के लगा जिससे अर्जुन कुछ काल के लिए मूर्च्छित हो गया। कर्ण रथ ठीक करने के लिए यह अवसर उपयुक्त समझ पहिया उखाड़ने में लग गया। परन्तु पहिया तिल भर भी



भूमि से न निकला। अर्जुन की मूर्छा दूर हो जाने पर कृष्ण ने कहा—"हे धनञ्जय, अब कर्ण के रथ में बैठने के पूर्व ही उसका अन्त कर देना चाहिए।" यह सुन अर्जुन ने एक पैने बाण द्वारा कर्ण की ध्वजा काट गिराई। पताका गिरते ही कौरव दल की हिम्मत टूट गई। उधर कर्ण को भी विजय-प्राप्ति की आशा न रही।

इसके पश्चात् अर्जुन ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर एक दिव्य बाण कर्ण पर छोड़ा। बाण ठीक कण्ठ में जाकर लगा और उसके सिर को साथ ले आकाश-मण्डल में चला गया। कौरव-सेना ने कर्ण का सिर बाण में बिधा देखते ही युद्ध बन्द कर दिया। सेनापति कर्ण के मरने से दुर्योधन भी हताश हो गया। उधर पाण्डवों की सेना में प्रसन्नता का ठिकाना न रहा; सब वीर हर्षित होकर शङ्ख और भेरी बजाने लगे। देवताओं ने भी अर्जुन को साधुवाद दिया। उसके बाद उस दिन का युद्ध समाप्त हुआ।

प्रश्न

१—शल्य के वचनों का कर्ण पर क्या प्रभाव पड़ा?

२—कर्ण ने परशुराम जी से ब्रह्मास्त्र किस प्रकार प्राप्त किया था?

३—कर्ण और अर्जुन के युद्ध से उस समय की युद्ध-प्रणाली पर क्या प्रकाश पड़ता है?

४—साधुवाद और धन्यवाद में क्या अन्तर है?

५—पर्जन्यास्त्र का प्रभाव नष्ट करने के लिए अर्जुन ने किस अस्त्र का प्रयोग किया था और क्यों ?

६—अर्जुन को धनञ्जय क्यों कहते हैं ?

अभ्यास

१—कर्ण और अर्जुन के युद्ध का संक्षेप में वर्णन करो।

२—'गुणग्राही व्यक्ति ही गुणों का आदर कर सकता है' उदाहरण देकर समझाओ।

३—आधुनिक युद्ध-प्रणाली से प्राचीन युद्ध-प्रणाली की तुलना करो।

४—अर्थ बताओ और अपने वाक्यों में इनका प्रयोग करो—

मर्म-स्थल, आच्छादित, पुरस्कार, उत्तेजित, स्थगित।

५—रिक्त स्थानों की पूर्ति करो—

(अ) सेनापति बन कर कर्ण अपना………………।

(आ) आकाश-मण्डल बाणों से इतना……हो गया कि सूर्य भी………।

(इ) देवताओं ने भी अर्जुन को……… …दिया।

६—वाक्यों में प्रयोग करो—

लोहे के चने चबाना, लोहा लेना, गीदड़-भभकी।

७—सन्धि-विच्छेद करो—

क्रोधान्ध, हतोत्साह, वाग्बाण, आदेशानुसार।

८—वाक्य-विश्लेषण करो—

जिस दिन दुर्योधन ने पाण्डवों को लाक्षागृह में जला देने का षड्यन्त्र रचा था उस दिन तुम्हारा यह धर्म कहाँ गया था ?

६—माता का स्नेह

[पुत्र के प्रति माता का निःस्वार्थ प्रेम माता के अकृत्रिम सहज स्नेह का पुत्र पर क्या प्रभाव पड़ता है ? माता का एकबार का प्रोत्साहन पुत्र के लिए कैसा उपकारी होता है ? इसका वर्णन इस पाठ में पढ़ो।

लेखक हैं स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट (जन्म सं० १६०१ मृत्यु स० १६७०)। आपके लेखों में मौलिकता प्रशंसनीय है। आपने 'हिन्दी-प्रदीप' नामक एक सुन्दर मासिक पत्र निकाला था। 'सुमन-संग्रह' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' इनकी सुन्दर, साहित्यिक पुस्तकें हैं]

वात्सल्य-रस की शुद्ध-मूर्ति माता के सहज स्नेह की तुलना इस जगत में, जहाँ केवल अपना स्वार्थ ही प्रधान है, कहीं ढूँढ़ने से भी न मिलेगी। दादी, दादा, चाचा, ताऊ आदि का स्नेह मर्यादा-परिपालन के ध्यान से देखा जाता है, किन्तु माता-पिता का स्नेह पुत्र में निरे वात्सल्य-भाव के मूल पर है, अब इन दोनों में विशेष आदरणीय, सच्चा निःस्वार्थ प्रेम किसका है, इसी बात को हम यहाँ बतलाना चाहते हैं।

बहुत लोगों की अनुमति है, कि लाड़-प्यार से लड़के बिगड़ जाते हैं, पर सूक्ष्म विचार से देखा जाय तो बालकों में अच्छी-अच्छी बातों का अंकुर गुप्त रीति पर प्यार ही से जमता है। विलायत के एक विद्वान् ने लिखा है, कि मेरी माता के असीम स्नेह ने

मुझे चित्रकारी में प्रवीण कर दिया। गुरु जितना पाठशाला में भय और ताड़ना दिखला कर वर्षों में सिखला सकता है, उतना लड़के अपने घर में माँ के अकृत्रिम सहज स्नेह से एक ही दिन में सीख लेते हैं। माँ के स्वाभाविक, सच्चे और अकृत्रिम प्रेम का प्रमाण इससे बढ़कर और क्या मिल सकता है कि लड़का कितना ही रोता अथवा मुरझाया हुआ हो, माँ की गोद में जाते ही चुप हो जाता है और जहाँ थोड़ी देर तक लड़के ने दूध न पिया तहाँ माँ के स्तन भर आते हैं, दूध टपकने लगता है और वह विकल हो जाती है। पुत्र के पालन-पोषण की चिन्ता, उसे निरोग और प्रसन्न देखकर चित्त का हुलास, रोगी तथा अनमना देख अत्यन्त विकल होना इत्यादि सब बातें माता ही में पाई जाती हैं।

लड़का कपूत और निकम्मा निकल जाय तो बाप उसका साथ नहीं देता, वह उसे घर से निकाल देता है, पर माँ बहुधा पति को भी त्याग कर निकम्मे पुत्र का साथ देती है। दो चार नहीं, वरन् हजारों ऐसी मातायें देखी गई हैं जिन्होंने बालक की अत्यन्त कोमल अवस्था ही में, पिता के न रहने पर चक्की पीस कर अपने पुत्र को पाला और उसे पढ़ा-लिखा कर सब भाँति समर्थ और योग्य कर दिया। वे पुत्र भी ऐसे सुयोग्य हुए हैं, कि सब भाँति भरे-पूरे घरानों में भी न निकलेंगे। महाकवि श्रीहर्ष के पिता ने, जब वे केवल पाँच ही वर्ष के थे, पराजित होकर लाज से अपना तन त्याग दिया। तब इनकी माँ ने चिन्तामणि-मन्त्र का इनसे जप करवाया और सरस्वती देवी का कृपा-पात्र बनाकर इन्हें बड़ा भारी पण्डित

बना दिया और पीछे से अपने पति के परास्त करने वाले पण्डितों को विवाद में परास्त कराकर पूरा बदला चुकवाया।

पुराणों में ऐसी अनेक कथायें मिलती हैं, जिनसे माता के वात्सल्य का परिचय मिलता है। माता का एक बार का प्रोत्साहन पुत्र के लिये जैसा उपकारी और उसके चित्त में प्रभाव उत्पन्न करने वाला होता है वैसी पिता की सौ बार की शिक्षा और ताड़ना भी नहीं होती। सौतेली माँ सुरुचि के वज्रपात-सदृश वाक्-प्रहार से ताड़ित और पिता की अवज्ञा और निरादर से अत्यन्त सन्तापित ध्रुव को, जब वे केवल पाँच ही वर्ष के बालक थे, माता का एक बार का प्रोत्साहन ध्रुव-पदवी की प्राप्ति का हेतु हुआ; जिसके समान उच्च और स्थिर पद आजतक किसी को मिला ही नहीं। पिता का स्नेह बहुधा बदला चुकाने की इच्छा से होता है। वह पुत्र को इसीलिये पालता-पोसता और पढ़ाता-लिखाता है, कि बुढ़ापे में वह हमारे काम आयेगा; जब हम सब भाँति अपाहिज और अपंग हो जायँगे तब हमारी सेवा करेगा और हमारे अन्न-वस्त्र की चिन्ता रक्खेगा। पर माँ का उदार और अकृत्रिम प्रेम इन सब बातों की कभी इच्छा नहीं रखता।

माँ अपनी प्रिय सन्तान के लिये कितना कष्ट सहती है, उसको स्मरण कर चित्त में वात्सल्य-भाव का उद्गार हो आता है। माता के स्नेह में पिता के समान प्रत्युपकार की भावना भी नहीं है। दया मानो देह धरे सामने आकर खड़ी हो जाती है। टूटी फूस की झोंपड़ी में जब मूसलाधार पानी बरस रहा है, फूस का छप्पर सब

ओर से ऐसा टपकता है कि कहीं तिल भर भी जगह नहीं बची है न कगाली के कारण इतना कपड़ा-लत्ता पास है कि आप ओढ़े और प्रिय सन्तान को ढाँप कर वृष्टि से बचावे ऐसे समय में आधी धोती ओढ़े आधी से अपने दुध-मुँहे बालक को ढाँपे माता उसको छाती से लगाये हुये है। अपने प्राण और देह का कुछ भी चिन्ता नहीं है; किन्तु वात और वृष्टि से पुत्र का कोई अनिष्ट न हो, इसलिये वह अत्यन्त व्यग्र हो रही है। पुत्र की रोगी और अस्वस्थ दशा में पलंग के पास उदास बैठी मन-मारे उसका मुँह ताक रही है। रात की नींद और दिन का भोजन असंभव हो गया है। भाँति-भाँति की मिन्नतें मानती है। जो कोई कुछ कहता है वह सब कुछ करती जाती है। अपनी जान तक चाहे चली जाय पर पुत्र को स्वास्थ्य-लाभ हो। पिता को अपने शरीर पर इतना कष्ट उठाना कभी न आवेगा। यह माता ही है जो पुत्र के स्वाभाविक स्नेह के वश हो इतने दुःख सहती है। बुद्धिमानों ने इन्हीं सब बातों को सोच-विचार कर लिख दिया है कि पिता से माँ का गौरव सौ गुना अधिक है। माँ का केवल गौरव मान बैठ रहना कैसा? हम तो कहेंगे कि पुत्र जन्म भर तन, मन, धन से माँ की सेवा करे तो भी उससे उऋण नहीं हो सकता। भाई-भाई में परस्पर स्नेह का बन्धन और बहुधा समान-शील होना माँ ही के दूध का परिणाम है। सब एक ही माँ का दूध पीते हैं, इसीलिये वे इतने प्रेमबद्ध रहते हैं।

रहस्य-लीला में गोपियों ने भगवान से तीन प्रश्न किये, जिसमें

उन्होंने तीन तरह का प्रेम का मार्ग दिखाया है। एक तो वे जो प्रेम करने पर प्रेम करते हैं; दूसरे वे जो उनसे चाहे प्रेम करो या न करो, तुमसे प्रेम करते हैं; तीसरे वे जो ऐसे दुष्ट हैं, कि उनसे कितना ही प्रेम करो, तो भी वे नहीं पसीजते। इसी सम्बन्ध में भगवान् ने कहा कि जो परस्पर प्रेम करते हैं वह तो एक प्रकार का बदला है, स्वच्छ स्नेह उसे नहीं कहेंगे। काम पड़ने पर शत्रु मित्र बना ही करते हैं, उसमें सौहार्द्र-धर्म-मूल नहीं है। दोनों परस्पर स्वार्थी हुये तो कुछ-न-कुछ कपट उसमें अवश्य ही रहेगा। मन में कपट का लेश भी आया कि स्वच्छ स्नेह की जड़ कट गई। केवल धर्म ही धर्म और स्नेह को दर्पण के समान प्रकाशित कर देनेवाला, जिसमें बदला पाने की कहीं गंध भी नहीं, वह स्नेह वही है, जो दया की साक्षात् स्वरूपा माँ पुत्र में रखती है।

प्रश्न

१—माता के अकृत्रिम सहज स्नेह का पुत्र पर क्या प्रभाव पड़ता है?

२—माँ अपने पुत्र के लिए क्या-क्या कष्ट झेलती है?

३—"पिता से माता का गौरव सौ गुना अधिक है" इस कथन से तुम कहाँ तक सहमत हो?

४—भगवान् ने कितने प्रकार के प्रेम के मार्ग बताए हैं? उनमें कौन-सा मार्ग सर्वश्रेष्ठ है?

५—माँ के पुत्र-स्नेह में कौन-कौन सी विशेषताएँ होती हैं?

अभ्यास

१—वात्सल्य-भाव, अकृत्रिम, प्रेमाह्वन, मन्त्राग्नि और सौहार्द्र को अर्थ सहित अपने शब्द कोष में लिख लो।

२—माता और पिता के पुत्र-विषयक प्रेम की तुलना करो।

३—ध्रुव को ध्रुव-पद किस प्रकार प्राप्त हुआ संक्षेप में वर्णन करो।

४—मातृ-स्नेह पर एक छोटा सा निबन्ध लिखो।

आदेश

अकृत्रिम = अ ; कृत्रिम। इसमें 'अ' निषेध सूचक है।

अनिष्ट = अन् इष्ट। इसमें 'अन्' भी निषेध सूचक है।

और भी कुछ शब्द देखो जिनमें 'अ' और 'अन्' उपसर्ग लगे हों। विचार करोगे तो तुम्हें विदित हो जायगा कि—

जिन शब्दों के आरंभ में व्यञ्जनवर्ण होते हैं उनके पहिले 'अ' और जिनके पूर्व स्वर होते हैं उनमें 'अन्' उपसर्ग लगाया जाता है।

'अनपढ़' शब्द में अन्' का नियम विरुद्ध प्रयोग है। ऐसे प्रयोगों से बचना चाहिए।

—:०:—

७—भूचाल

[इस पाठ के लेखक हैं श्री जगन्नाथ खन्ना। प्रस्तुत पाठ में आपने भूचाल आने का कारण बड़ी सरल रीति से समझाया है। इसमें दुनियाँ के कुछ प्रसिद्ध भूकम्पों का भी वर्णन किया है जिनसे बहुत धन-जन की हानि हुई है।]

किसी कुम्हार के बढ़िया चाक को या ऐसे ही किसी लट्टू को हम तेजी से घूमता हुआ देखें तो वह हमें चाल-रहित एक स्थान पर खड़ा हुआ-सा प्रतीत होता है। पर यदि हम उसी चाक या लट्टू को बड़े ध्यान से देखें तो वह कुछ हिलता और काँपता हुआ दिखलाई पड़ने लगता है। कभी कभी तो वह एकदम जोर से हिलता हुआ दिखाई देता है जैसे किसी ने उसे हाथ से हिला दिया हो। उसके इस प्रकार हिलने और काँपने के कई कारण हैं। चाक का धुरा यदि बिलकुल बीच में न हो या उसके भिन्न-भिन्न भाग समतोल न हों—कहीं भारी और कहीं हलके हों—अथवा उसके घूमने की चाल में कभी-कभी अंतर हो जाता हो, तो ऐसा होने लगता है।

इसी चाक की तरह हमारी पृथ्वी अपनी धुरी पर सदैव तेजी से घूमा करती है। हम पृथ्वी के आकार के सामने इतने अधिक छोटे हैं कि पृथ्वी की पीठ पर बैठे हुए भी उसे घूमती हुई अनुभव नहीं कर सकते। पृथ्वी के चारों ओर का सारा भाग समतोल नहीं है; कहीं-कहीं न्यून या अधिक, हलका या

भारी है। इसके चारों ओर की तौल समय समय पर बदलती है। इसका कारण यह है कि सूर्य और चन्द्रमा की आकर्षण-शक्ति के प्रभाव से समुद्र में जो लहरें उठा करती हैं उनके साथ पानी का बहुत बड़ा और भारी भाग बार-बार एक स्थान से दूसरे स्थान पर चला जाया करता है। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा के प्रभाव से समुद्र का पानी ऊपर और नीचे उठा और गिरा करता है, उसी प्रकार पृथ्वी के ऊपर की चट्टानें सूर्य और चन्द्रमा की आकर्षण-शक्ति के कारण ऊपर को खिच जाती और नीचे को चली जाती हैं। वर्षा-ऋतु में हमारे भारतवर्ष में और विशेष कर आसाम की पहाड़ियों पर पानी बहुत बड़े परिमाण में एकाएक गिर जाता है। शीत प्रधान देशों में बर्फ कहीं कहीं अकस्मात् बहुत अधिक गिर जाया करती है। इससे उन भागों में पृथ्वी के ऊपर का भार बढ़ जाया करता है। इस तरह पानी के बोझ के कारण पृथ्वी कुछ-कुछ दब जाया करती है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी बिलकुल गोल भी नहीं है। नारंगी की तरह उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों पर कुछ चपटी है। इन कारणों से पृथ्वी सदैव कुछ-न-कुछ हिला करती है। यह हिलाव सूक्ष्म-यंत्रों द्वारा मालूम किया जा सकता है। यह धीमा कंपन कभी कभी भयानक रूप धारण कर लेता है जिससे सारी पृथ्वी हिल जाती है और उसका कोई-कोई भाग एकदम ध्वस्त हो जाता है। इन्हीं भारी और भयङ्कर कंपनों को भूचाल या भूकंप कहते हैं।

इन भूचालों के प्रभाव से पृथ्वी-तल पर एक प्रकार की लहरों

की-सी चाल पैदा हो जाती है। यदि हम तालाब के स्थिर पानी की लहरों की ओर दृष्टि डालें तो हमें मालूम होता है कि पानी स्वयं लहरों के साथ आगे नहीं बढ़ा करता। इसकी सत्यता की जाँच पानी के ऊपर कोई तैरनेवाला छोटा पदार्थ डाल कर उसे लहराते हुये देखकर की जाती है। ऐसा करने से यद्यपि लहरें आगे को बढ़ती हुई मालूम होती हैं तथापि वह पदार्थ वहीं-का-वहीं, एक ही स्थान पर, ऊपर नीचे उछलता हुआ रह जाता है। इससे ज्ञात होता है कि लहरों के साथ पानी बहकर आगे नहीं जाता, प्रत्युत थोड़ी दूर का चक्कर लगा कर एक स्थान पर रह जाता है। पानी ही की तरह पृथ्वी-तल पर पृथ्वी की लहरें उठा करती हैं। पृथ्वी-तल पर इन लहरों की चाल इतनी तेज होती है कि प्राय: भीतर से एक प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है। लहरों के कारण पृथ्वी ऊपर-नीचे उठती है और आगे-पीछे भी हिलती-डुलती है। जब ऊपर नीचे आती-जाती है तब पृथ्वी के ऊपर की वायु में बड़े जोर का धक्का लगता है। इससे ढोलक की सी ध्वनि पैदा होती है। कभी-कभी यह ध्वनि बहुत दूर तक सुनाई पड़ती है। जहाँ भूकंप का अन्य कोई भी प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता, वहाँ भी यह ध्वनि सुनी गई है। भूकंप के समय मकानों के हिलने, छतों के फटने, वृक्षों के काँपने या बरतनों आदि की ध्वनि के आगे पृथ्वी की यह ध्वनि अधिकतर छिप जाती है। इस प्रकार पृथ्वी की सतह में एकाएक हलचल उत्पन्न हो जाने के कारण भूकंप होते हैं।

कोई-कोई भूकंप पृथ्वी में ज्वालामुखी के उमड़ आने से होते हैं। किन्तु जो भूकंप अधिकतर ज्वालामुखी के पास होते हैं, वे ज्वालामुखी के विस्फोट के कारण नहीं होते। यह देखा गया है कि जापान में जहाँ सबसे अधिक भूकंप हुआ करते हैं ज्वालामुखी से दूर पर ही प्रायः बड़े-बड़े भूकंप उठते हैं। ज्वालामुखी पर्वतों के पास की जमीन प्रायः जोर से हिल जाया करती है; ज्वालामुखी का एकाएक विस्फोट इसका कारण है। वास्तव में ये भूकंप नहीं होते।

देखा गया है कि पृथ्वी के उन भागों पर प्रायः भूकंप हुआ करते हैं जहाँ पर्वतों की श्रेणी अभी तक लगातार बनती जा रही है। इनमें से सबसे बड़ा भूकंप उठनेवाला भाग यूरोप के आल्प्स नामक पर्वत से लेकर हिमालय तक की पर्वत-श्रेणी का है। इस भाग में इटली से लेकर चीन के मध्य-भाग तक की सारी पृथ्वी आ जाती है। अनुमान किया गया है कि संसार के समस्त भूचालों का पाँचवाँ भाग इस प्रदेश में होता है। इसके बाद भूकंप आनेवाला पृथ्वी का दूसरा भाग बंगाल की खाड़ी से लेकर न्युजीलैंड के उत्तर तक चला गया है। इसके उत्तर में एक तीसरा भाग भी है जो कामास्चटका द्वीप से लेकर फिलिपाइन-द्वीपपुंज तक चला गया है। इस भाग में जापान भी आ जाता है। इसके अतिरिक्त भूकंप आनेवाले पृथ्वी के तीन भाग अमेरिका में भी हैं।

किसी समय भारतवर्ष और लंका-द्वीप जुड़े हुए थे। एक

भयंकर भूकंप आने से बीच की पृथ्वी समुद्र से ढक गई और लंका भारतवर्ष से अलग होकर द्वीप बन गया। इनके बीच की पृथ्वी के चिह्न अभी तक दिखाई देते हैं जिन्हें अब रामेश्वर का पुल कहते हैं। इसी प्रकार भारतीय महासागर में भारत, मारिशस-द्वीप और मेडागास्कर के बीच कई द्वीप थे जो भूकंप के कारण नष्ट होकर समुद्र के उदर में चले गये।

अनुमान किया गया है कि इतिहास में सबसे बड़ा भूकंप आसाम में ११ जून, १८९७ ईस्वी को आया था। सौभाग्यवश यह भूकंप ऐसे स्थान में आया जहाँ कोई बहुत बड़े नगर नहीं थे। इस भूकंप का असर एक हज़ार वर्ग मील तक की पृथ्वी पर पहुँचा था और उसके मध्यवर्ती अनेक छोटे छोटे नगर और ग्राम एकदम नष्ट हो गये थे।

यह भूकप खसिया पहाड़ के चारों ओर आया था। यह स्थान पहाड़ी होने के कारण इतना आबाद नहीं है जितना भारत के दूसरे भाग हैं। यहाँ केवल शिलांग ही एक बड़ा नगर है जो भूकंप के ख़ास स्थान से बहुत दूर होने पर भी प्रायः बिलकुल नष्ट हो गया था। अनुसंधान किया गया है कि इस भूकंप की भयानक गर्जना के कारण पृथ्वी एक मिनट में दो सौ बार १८ इंच ऊँची-नीची उछली-कूदी थी। इस प्रकार पृथ्वी के ऊपर नीचे उठने-गिरने के कारण बड़े-बड़े वृक्ष जड़ से उखड़ कर दूर जा गिरे; मकानों की दीवारें और छतें चकनाचूर होकर एक दम नष्ट हो गयीं। पर्वतों से बड़े-बड़े विशाल पत्थरों के टुकड़े वायु में दस-दस

फीट ऊँचे उड़ने लगे। रेल की पटरियाँ अपने स्थान से आगे बढ़कर मरोड़ खा गयीं और नदियों के कई पुल एक साथ ध्वस्त हो गये। सड़कों के अधिकतर पुल भी पृथ्वी से उखड़ कर ऊपर उड़ गये। इस प्रकार आसाम के पहाड़ी स्थानों के कितने ही ग्राम और नगर पृथ्वी में समाकर नष्ट हो गये जिसके कारण लाखों की संख्या में लोग हताहत हुए और जो बच गये वे अपने घर-बार से वञ्चित हुए।

इस भूकंप के बाद पता लगा कि अनेक स्थानों पर पृथ्वी ऊपर को उठ आई है। कहीं-कहीं पर तो २५ फीट तक ऊपर उठ गयी थी। पृथ्वी के कहीं कहीं पर अधिक और कहीं-कहीं पर कम उठ जाने पर वह झँझार-सी हाली गयी और अनेक स्थानों पर बड़े-बड़े गड्ढे बन गये। उनमें पानी जमा हो गया और झीलें बन गयीं। गारो नामक पर्वत पर एक नदी बहती थी। उसका नाम था रांथम। उसकी घाटी के एक-दो स्थान बहुत ऊपर को उठ गये। इसके बीच का स्थान नीचा हो गया। फलतः नदी के पानी का बहाव बन्द हो गया और वहाँ पर एक बड़ी आध मील लम्बी झील बन गयी। इसी प्रकार चन्द्रा नामक नदी की सतह के कई भाग ऊपर को उठ गये, जिससे कई बड़ी-बड़ी झीलें बन गयीं।

इस भूकंप के अतिरिक्त और भी अनेक भयानक भूकंप समय-समय पर, पृथ्वी के भिन्न-भिन्न स्थानों में, हुए हैं। पुर्तगाल देश के लिस्बन नामक नगर में इसी प्रकार का एक भूकंप नवंबर १७५५ ईस्वी को हुआ था। बादल की गर्जना के सदृश भयानक



भूकंप का प्रकोप

शब्द एकाएक सुनाई पड़ा। इसके बाद पृथ्वी हिली, जिससे नगर का अधिक भाग नष्ट हो गया। यह बहुत घना बसा हुआ था। यहाँ की सड़कें तंग और मकान ऊँचे थे। मकानों के गिरते हुए पत्थरों से बचने के लिए नगर-निवासी नदी के किनारे, खुले स्थान की ओर भागे। जब लोगों का समूह वहाँ पर इकट्ठा हो गया, तब भूकंप की एक तेज लहर आई, जिससे पहले तो नदी का पानी पाताल को चला गया और नदी सूख गई, फिर थोड़े समय बाद पचास फीट ऊँची एक लहर आई और किनारे पर एकत्र हुए कोई साठ हजार नगर-निवासियों को बहा ले गई। यह नदी बड़ी चौड़ी और गहरी थी। इसके किनारे पर बड़ा मजबूत और सुंदर बंदरगाह था। वह भी पानी में डूबकर लापता हो गया। बंदर पर खड़े हुए सारे जहाज भी उसके साथ डूब गये। कहा जाता है कि इन डूबे हुए पदार्थों का चिह्न तक न मिला। बंदरगाह का स्थान अथाह गहराई में डूब गया। इस भूकंप का असर बड़ी दूर-दूर तक पहुँचा था। कहते हैं कि स्विटजरलैंड तक इसका असर पहुँचा था। बोहेमिया के कई प्रसिद्ध झरने सूख गये। मराको का एक नगर, दस हजार निवासियों के साथ, ध्वस्त हो गया। स्काटलैंड की झीलों तक में भयंकर तूफान आ गया।

अमेरिका के सैनफ्रांसिस्को नामक नगर में १९०६ ई० में सब से अधिक ध्वंसकारी भूकंप आया था। उससे समस्त नगर नष्ट हो गया। सड़कों के नीचे वहाँ गैस के नल लगे हुए थे। वे फट गये जिससे आग लग गई और जो कुछ नगर का बचा हुआ भाग था

वह भी जल कर राख हो गया। इस भूकंप का असर सात सौ मील तक पहुँचा था। इसके पूर्व भी इस स्थान पर सात भूकंप आ चुके थे, किन्तु यह उन सब से भयंकर था। अमेरिका देश धनवान् और उन्नतिशाली है। आज सैनफ्रांसिस्को में भूकंप का कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ता। यही नहीं, प्रत्युत नगर अधिक सुंदर और बड़ा बन गया।

जापान तो भूकंपों का देश ही है। वहाँ हमेशा भूकंप आया करते हैं। इसी कारण वहाँ के अधिकतर मकान लकड़ी के हैं। सब से बड़ा भूकंप जापान में २८ अक्टूबर, १८९१ ई० को आया था। उसके प्रभाव से मध्य जापान के वारी और मीनो नामक दो सूबे बिलकुल ही नष्ट हो गये। ये सूबे बड़े उपजाऊ, आबाद और धनवान् थे। भूकंप के कारण बड़े-बड़े मकान नींव से उखड़ कर दूर जा गिरे, पृथ्वी में स्थान-स्थान पर बड़ी-बड़ी खाइयाँ बन गयीं, रेल की सड़कें टूट-टाट गईं और आस-पास के पर्वत चट्टान बन गये। एक विचित्र घटना इस भूकंप में यह हुई कि नदी के किनारे सिकुड़ कर पास-पास हो गये। इसी प्रकार और भी कितने ही प्रकार के विचित्र परिवर्तन वहाँ हो गये।

प्रश्न

१—भूकंप किसे कहते हैं? ये क्यों और किस प्रकार आते हैं?

२—भूकंप का पृथ्वी-तल पर क्या प्रभाव पड़ता है?

३—भूकंप प्रायः संसार के किन-किन भागों में हुआ करते हैं?

४—इतिहास का सबसे बड़ा भूकंप कब और कहाँ आया ; इसने उस प्रदेश पर क्या प्रभाव पड़ा ?

अभ्यास

१—पुर्तगाल के लिस्बन नामक नगर में आए हुए भूकंप का वर्णन करो।

२—जापान को भूकंपों का देश क्यों माना जाता है ? वहाँ के निवासियों ने लकड़ियों के मकान क्यों बना रक्खे हैं ? वहाँ के किसी भूकंप का वर्णन करो।

३—अर्थ बताओ और अपने वाक्यों में इनका प्रयोग करो—ध्वंस-कारी, विस्फोट, अनुसन्धान, प्रत्युत ।

४—रिक्त स्थानों की पूर्ति करो—

(अ) इन्हीं भारी और भयंकर ·······को भूचाल कहते हैं।

(आ) यद्यपि ऐसा करने से कोई परिणाम नहीं होगा...... तुम यह कर सकते हो ।

—:※:—

८—परशुराम-लक्ष्मण-संवाद

[राम-भक्ति शाखा के कवियों में तुलसीदास जी का स्थान सब से ऊँचा है। अवधी भाषा में, दोहे चौपाइयों में इन्होंने अद्वितीय 'राम-चरित मानस महा-काव्य लिखा है।' सर-जार्ज ग्रियर्सन का कहना है कि भारत में जितना ज्ञान तुलसीदास जी के रामचरित-मानस का है, उतना

योरोप में 'बाइबिल' का भी नहीं है। यह अंश उसी महा-काव्य से लिया गया है। इसमें कवि की संवाद-पटुता देखो।]

[जन्म लगभग सं० १५५४ वि०.   गोलोकवास सं० १६८० वि०]

चौपाई

समाचार कहि जनक सुनाये, जेहि कारन महीप सब आये।
सुनत बचन फिरि अनत निहारे, देखे चाप खंड महि डारे।
अति रिस बोले बचन कठोरा, कहु जड़ जनक धनुष केइ तोरा।
वेगि देखाव मूढ़ नतु आजू, उलटौं महि जहँ लगि तव राजू।
अति डर उतर देत नृप नाहीं, कुटिल भूप हरषे मन माहीं।
सुर-मुनि-नाग, नगर-नर - नारी, सोचहिं सकल त्रास उर भारी।
मन पछिताति सीय महतारी, विधि सँवारि सब बात बिगारी।
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता, अरध निमेष कलप सम बीता।

दोहा

सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु।
हृदय न हरष बिषाद कछु बोले श्री रघुबीरु॥

चौपाई

नाथ संभु धनु भंजनिहारा, होइहि कोउ एक दास तुम्हारा।
आयसु काह कहिअ किन मोही, सुनि रिसाय बोले मुनि कोही।
सेवक सो जो करै सेवकाई, अरि करनी करि करिअ लड़ाई।
सुनहु राम जेहि सिव-धनु तोरा, सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।



सो बिलगाऊ बिहाई समाजा, न तु मारे जैहैं सब राजा।
सुनि मुनि बचन लषन मुसुकाने, बोले परसु धरहि अपमाने।
बहु धनुही तोरी लरिकाई, कबहुँ न असि रिसि कीन्हि गोसाईं।
एहि धनु पर ममता केहि हेतू, सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू।

दोहा

रे नृप बालक कालबस बोलत तोहि न सँभार।
धनुही सम त्रिपुरारि धनु बिदित सकल संसार॥

चौपाई

लषन कहा हँसि हमरे जाना, सुनहु देव सब धनुष समाना।
का छति लाभु जून धनु तोरे, देखा राम नये के भोरे।
छुअत टूट रघुपतहिं न दोषू, मुनि बिनु काज करिअ कत रोषू।
बोले चितै परसु की ओरा, रे सठ सुनेसि सुभाउ न मोरा।
बालक बोलि बधौं नहिं तोही, केवल मुनि जड़ जानहि मोही।
बालब्रह्मचारी अति कोही, बिस्व बिदित छत्रिय कुल द्रोही।
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही, बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही।
सहस बाहु भुज छेदनिहारा, परसु बिलोकु महीप कुमारा।

दोहा

मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीप किसोर।
गरभन्ह के अरभक दलन परसु मोर अति घोर॥

चौपाई

बिहँसि लषन बोले मृदुबानी, अहो मुनीस महा भट मानी।
पुनि पुनि मोहि दिखाव कुठारू, चहत उड़ावन फूँकि पहारू।
इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं. जो तरजनी देखि मर जाहीं।
देखि कुठार सरासन बाना, मैं कछु कहेउँ सहित अभिमाना।
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी, जो कछु कहहु सहौं रिस रोकी।
सुर, महिसुर, हरिजन, अरु गाई. हमरे कुल इन्ह पर न सुराई।
बधे पाप अपकीरति हारे, मारतहू पाँ परिअ तुम्हारे।
कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा, व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा।

दोहा

जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबंसमनि बोले गिरा गँभीर॥

चौपाई

कौसिक सुनहु मंद यह बालक, कुटिल काल बस निज कुल घालक।
भानु बंस राकेस कलंकू, निपट निरंकुस अबुध असंकू।
काल कवलु होइहि छन माहीं, कहौं पुकारि खोरि मोहि नाहीं।
तुम्ह हटकहु जौ चहहु उबारा, कहि प्रताप बल रोष हमारा।
लषन कहेहु मुनि सुजस तुम्हारा, तुम्हहिं अछत को बरनै पारा।
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी, बार अनेक भाँति बहु बरनी।
नहिं संतोष तौ पुनि कछु कहहू, जनि रिसि रोकि दुसह दुख सहहू।
बीर ब्रती तुम्ह धीर अछोभा, गारी देत न पावहु सोभा।

दोहा

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रिपु पाइ रन कायर करहिं प्रलापु॥

चौपाई

तुम्ह तौ काल हाँकि जनु लावा, बार-बार मोहिं लागि बोलावा
सुनत लषन के बचन कठोरा, परसु सुधारि धरेउ कर घोरा
अब जनि देइ दोष मोहि लोगू, कटुबादी बालक बध जोगू
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा, अब यह मरनहार भा साँचा
कौसिक कहा छमिअ अपराधू, बाल दोष गुन गनहिं न साधू
कर कुठार मैं अकरन कोही, आगे अपराधी गुरुद्रोही
उतर देत छाँड़ौं बिनु मारे, केवल कौसिक सील तुम्हारे
न तु एहि काटि कुठार कठोरे, गुरुहिं उरिन होतेउँ स्रम थोरे

दोहा

गाधि सुवन कह हृदय हँसि मुनिहि हरिअरै सूझ।
अजगव खंडेउ ऊख जिमि अजहुँ न बूझ अबूझ।

चौपाई

कहेउ लषन मुनि सील तुम्हारा, को नहिं जान बिदित ससारा
मातहि पितहि उरिन भये नीके, गुरु रिनु रहा सोच बड़ जीके
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा, दिन चलि गयेउ ब्याज बहु बाढ़ा
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली, तुरत देउँ मैं थैली खोली

सुनि कटु बचन कुठार सुधारा, हाय हाय सब सभा पुकारा।
भृगुबर परसु देखावहु मोही, बिप्र बिचारि बचौं नृपद्रोही।
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े, द्विज देवता घरहिं के बाढ़े।
अनुचित कहि सब लोग पुकारे, रघुपति सैनहिं लषन निवारे।

दोहा

लषन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोप कृसानु।
बढ़त देखि जलसम बचन बोले रघुकुल भानु॥

चौपाई

नाथ करहु बालक पर छोहू, सूध दूध मुख करिअ न कोहू।
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना, तौकि बराबरि करै अयाना।
जौं लरिका कछु अचगरि करहिं, गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं।
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी, तुम्ह सम सील धीर मुनि ज्ञानी।
राम बचन सुन कछुक जुड़ाने, कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने।
हँसत देखि नख सिख रिस व्यापी, राम तोर भ्राता बड़ पापी।
गौर सरीर स्याम मन माहीं, कालकूट मुख पयमुख नाहीं।
सहज टेढ़ अनुहरै न तोही, नीच मीच सम देख न मोही।

दोहा

लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल॥

चौपाई

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया, परिहरि कोप करिअ अब दाया
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने, बैठिअ होइहि पाय पिराने
जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई, जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई
बोलत लषनहिं जनक डेराहीं, मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं
थर-थर काँपहि पुर नर नारी, छोट कुमार खोट बड़ भारी
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी, रिस तन जरै होइ बलहानी
बोले रामहिं देइ निहोरा, बचौं बिचारि बंधु लघु तोरा
मन मलीन तनु सुन्दर कैसे, बिषरस भरा कनक घट जैसे

दोहा

सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि नयन तरेरे राम ।
गुरु समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम ॥

प्रश्न

१—इस पाठ में रामायण की कथा का कौन सा अंश लिया गया है?
२—परशुराम के क्रोधित होने का क्या कारण था ?
३—इस पाठ से तुम्हें परशुराम के स्वभाव के विषय में क्या ज्ञात होता है ?
४—लक्ष्मण के बोलने से जनक क्यों डरते थे ?
५—लक्ष्मण की किन बातों को सुनकर 'भृगुवंश-मणि' सरोष होकर बोले ?

अभ्यास

१—राम और लक्ष्मण के स्वभाव का तुलनात्मक विवेचन करो।

२—इस पाठ में जिन कथाओं की ओर संकेत है उन्हें संक्षेप में लिखो।

३—परशुराम और लक्ष्मण का सवाद अपने शब्दों में लिखो।

४—अपनी कक्षा मे इस दृश्य का अभिनय करो।

५—चौपाई का क्या लक्षण है ?

आदेश

"लखन उतर आहुति सरिस, भृगुवर कोप कृसानु।
बढ़त देखि जल-सम वचन, बोले रघु-कुल-भानु।"

इस दोहे मे 'लखन उतर' (लक्ष्मण का उत्तर) उपमेय, आहुति उपमान, सरिस (सदृश) वाचक है। यहाँ प्रज्वलन कारिता धर्म छिपा हुआ है। इसके प्रकट कर देने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है—लक्ष्मण का उत्तर आहुति के समान (क्रोधाग्नि की) ज्वाला बढ़ाने वाला है।

इस पाठ में आई हुई अन्य उपमाओं के लुप्त अंग व्यक्त करके अर्थ स्पष्ट करो।

—:o:—

६—सुखी जीवन

[इस कहानी के लेखक श्री अन्नपूर्णानन्द हास्यरस की शिष्ट कहानियाँ लिखने में विख्यात हैं। इसमें विनोद का सुन्दर ढंग से वर्णन हुआ है। सुखी-जीवन में गंभीर बातें भी कही जा सकती हैं किन्तु यहाँ गंभीर बातें ऐसे ढंग से कही गयी हैं कि उन्हें सुन कर हँसी आए बिना रह नहीं सकती। इस कहानी में मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है।]

बहस यह छिड़ गयी थी कि संसार में सुखी कौन है, और सुख किस चीज का नाम है। लाला झाऊलाल की राय थी कि संसार में सुखी वही है जिसकी आमदनी दो पैसा हो और खर्च पौने दो पैसा। लाला मल्लूमल की राय थी कि जो भूख से दो रोटी ज्यादा खाकर हजम कर सके वही संसार में सुखी कहलाने योग्य है।

पं० बिलवासी मिश्र ने सुखी जीवन की जो व्याख्या की वह बड़े मार्के की थी। उन्होंने कहा, "सज्जनो, सुख और दुःख, दुःख और सुख यही हमारे और आपके जीवन के ताने बाने हैं। इसी ताने बाने से हम उस धूप-छाँह को बुनते हैं, जिसका नाम मनुष्य-जीवन है। प्रश्न यह उठा है कि सुखी जीवन कहते किसे हैं। मेरी राय में सुखी जीवन तब कहना चाहिये जब दस में अपनी गणना हो, बस में स्त्री हो, बकस में ठनाठन हो, हँसमुख स्वभाव हो और नस-नस में बेफिक्री हो। गेह अपना हो,

किराये का न हो, देह अपनी हो—डाक्टरों की न हो, और नेत्र ऐसे लोगों का हो जो अपने को निकम्मा न समझते हों। सुखी वह है जो न कभी छब्बे बनने की कोशिश करे और न दूबे बने। सुखी वह है जो आशा से सदा दूर रह कर······"

"पंडित जी!" लाला मल्लूमल ने बिगड़कर कहा—"अब चुप रहिये। आप की बात मैं नहीं सुनना चाहता।"

"पंडितजी ने चकपकाकर पूछा, "क्या आप बनाने का कष्ट करेंगे कि क्यों?"

"आपने जीवन को सुखी बनाने के लिए आशा से दूर रहने की सलाह दी है। इस सलाह को मैं कदापि न मानूँगा। मेरे लिए यह केवल असम्भव ही नहीं वरन् मूर्खतापूर्ण है। मैं आशा को अपने जीवन से दूर नहीं कर सकता।"

"आखिर क्यों?"

"इसलिए कि आशा मेरी स्त्री का नाम है।"

अपनी बात पर सबको मुसकाते देख लाला मल्लूमल को खयाल हुआ कि लोग उन्हें झूठा समझ रहे हैं। इसलिए उन्होंने फिर कहा, "आप लोग हँसते क्यों हैं? मैं सत्य कहता हूँ, मेरी स्त्री का नाम आशा है। वह दो बहिन हैं, बड़ी का नाम आशा और छोटी का नाम तमाशा है।"

इस बात पर कहकहे का तूफान ऐसा उठा कि कुछ देर में शान्त हुआ। पं० बिलवासी मिश्र ने अपनी हँसी रोकते हुए कहा, "सज्जनो, सुखी जीवन के लिए सबसे अधिक आवश्यक है

भरपेट भोजन। इस विषय में दो राय हो ही नहीं सकती। जिस प्रकार बिना पेंदे के जलपात्र की कल्पना आप नहीं कर सकते उसी प्रकार बिना भरपेट भोजन के सुखी जीवन की कल्पना भी नहीं हो सकती। महाकवि 'चचा' ने इसी सम्बन्ध में एक बार कहा था—

जैसो जहाँ जब जन्म लहौं
जुलहा रजपूत कि जाट कि आगा।
भोज को राज न चाहौं 'चचा'
यदि भोजन रोज मिलै बिनु नागा॥

आप लोग स्वयं इस बात का अनुभव कर चुके होंगे और नित्य प्रति करते होंगे कि पेट का सुखी जीवन से अत्यन्त अन्तरङ्ग सम्बन्ध है। पेट का प्रश्न एक विकट समस्या के रूप में मनुष्य मात्र के सामने सदा उपस्थित रहता है। आश्चर्य का विषय है कि इसके अतिरिक्त अन्य किसी विषय पर कविगण को कविता करने की कैसे सूझी!

पेट को बुरा भला कह डालना तो साधारण सी बात है। बेचारा गरीब मजदूर जो सुबह से शाम तक जाँगर तोड़ने पर चार आने पैदा करता है वह भी रात में भूख की मरोड़ से व्यथित होकर पेट को गाली सुना देता है। और दूसरे का पेट काटकर अपना पेट भरने वाला मिल-मालिक, या सूदखोर सेठ, या जालिम जमीन्दार भी जरूरत से ज्यादा खाकर अपच होने पर पेट ही को कोसता है। पर इसका विचार कोई नहीं करता

कि सृष्टि के आदि से और सृष्टि के अन्त तक अगर किसी चीज ने हमारा साथ दिया है और देगा तो वह पेट ही है। धर्म-कर्म आचार-विचार—यहाँ तक कि स्वयं सृष्टि का आकार-प्रकार भी बदल गया, पर पेट जो तब था वह अब है। महाकवि 'चचा' ने इसी बात को यों कहा है और खूब कहा है—

बैल बने पै मिलै दुरवा कि मिलै सुरबा बनि मोमिन मुल्ला।
रङ्क बने रिरकौं बिनु अन्न कि राउ बनौं करि दूधन कुल्ला॥
माँड़ मिलै कि मिलै दधि माखन खाँड़ मिलै कि मिलै रसगुल्ला।
पेट अनन्त रहै नित नूतन और सबै बिनसै जिमि बुल्ला॥

सज्जनो, सच पूछिये तो पूरी तौर से पेट की महिमा वही गा सकता है जिसे पेट का धन्धा न हो। मैं स्वयं पेट पर बहुत कुछ लिखने वाला था, पर ऐसा पेट के चक्कर में पड़ा कि पेट की बात पेट ही में रह गयी। एक बड़े अचम्भे की बात है कि पीठ और पेट पुराने पड़ोसी हैं, पर पीठ की मार सह जाती है लेकिन पेट की मार नहीं सह जाती।

पेट के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जा सकता था वह कवि लोग सदियों पहले कह चुके ; पर तब भी कुछ बातें ऐसी बच गयीं जिन्हें कवि 'चचा' के सिवा दूसरा कोई इस खूबी के साथ कह भी नहीं सकता था। उनका पेशा पुरोहिती का था, इसलिए सम्भव है पेट सम्बन्धी सब प्रकार के अनुभव प्राप्त करने का जितना अच्छा साधन उन्हें था उतना अन्य कवियों को न रहा

हो। पुरोहिती का व्यवसाय ही कुछ ऐसा है कि पेट को हर समय चौकन्ना रहना पड़ता है—न जाने कब और कहाँ उसे अपने बलाबल की परीक्षा देनी पड़ जाय।

कारण जो कुछ रहा हो पर यह ध्रुव सत्य है कि कवि 'चच्चा' ने इस विषय पर जो कुछ लिखा है वह लाजवाब है, अनुपम है, बेजोड़ है। सुनिये –

करनी अलीक नीक नेवर अनेक कियो
आयु सिरानी तदपि पूरन पर्‌यो नहीं।
कारन तिहारे नर बानर भ्रमत नित्य
औगुन कुकर्म कहो कवन कर्‌यो नहीं॥
एक सों मतङ्ग औ पतङ्ग को नचाइ डारै
जेते जीवधारी यातें कोऊ उबर्‌यो नहीं।
जुगन जुगादिन सों जाहिल ज्यों आलिम त्यों
भरि भरि हार्‌यो यहि खन्दक भर्‌यो नहीं॥

प्रश्न

१—सुखी किसे-किसे कहा जा सकता है?

२—पंडित बिल्वासी मिश्र ने सुखी जीवन की क्या व्याख्या की?

३—मल्लूमल को क्यों ख्याल हुआ कि लोग मुझे झूठा समझ रहे हैं।

४—पेट के भरने और न भरने पर जीवन का सुख कैसे निर्भर रहता है?

५—कवि चच्चा ने पेट के विषय में क्या कहा है?

अभ्यास

१—सुखी जीवन पर एक निबन्ध लिखो।

२—पेट के भरने और न भरने पर जीवन का सुख कैसे निर्भर रहता है, इसे स्पष्ट करो।

३—चच्चा कवि की उक्ति के विषय में अपनी सम्मति प्रकट करो।

—:o:—

१०—देवताओं की सवारी

[लेखक हैं पं॰ ईश्वरीप्रसाद शर्मा। आपको पौराणिक कथाओं और हिन्दू संस्कृति तथा सभ्यता का अच्छा ज्ञान है।

आधुनिक विज्ञान-युग में पौराणिक कथाओं पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। कारण यह है कि अलंकारिक शैली में वर्णित कथाएँ रूपकादि से आच्छादित होने से साधारण पाठक उन्हें समझ नहीं पाते। लेखक ने देवताओं की सवारियों का सुन्दर वैज्ञानिक वर्णन करके उन्हें सम्भव और बोधगम्य बना दिया है]

हिन्दू शास्त्रों के जिस अंश में पौराणिक तत्वों का विवरण दिया गया है, उसमें सभी देवताओं की एक-एक सवारी बतलाई गई है। सच पूछिये, तो कोई प्रधान देवता बिना सवारी का नहीं है; परन्तु सब से पहिले जिन्होंने देवताओं की सवारियों की कल्पना की है, उन देव-कवियों की सूझ की हम चाहे जितनी बड़ाई करें; पर उनकी अनोखी बातें सभी समय सभी मनुष्यों की बुद्धि



देवताओं की सवारी

में नहीं आती; क्योंकि हम अज्ञानी मनुष्यों के मस्तिष्क में अधिकतर कूड़ा-कर्कट ही भरा रहता है।

ब्रह्मा का वाहन हंस है। यह बहुत ही अच्छी बात है। ब्रह्मा मानसरोवर में तैरते हुए अपने चारों मुख से चारों वेद गाते रहते हैं और उनका वाहन हंस मधुर कल-कल नाद से उस जलद-गम्भीर वेद-ध्वनि की प्रतिध्वनि करता हुआ चारों दिशाओं को गुँजाता रहता है। 'हंस' शब्द का एक और अर्थ है—आत्मा अथवा परमात्मा। इस अर्थ से वेद-निहित गम्भीर सत्य का कैसा गूढ़ सम्बन्ध है, यह सोचने की बात है।

विष्णु का वाहन गरुड़ है। यह भी बिलकुल ठीक है। जैसे देवताओं में बड़े विष्णु, वैसे ही पक्षियों में बड़ा गरुड़ है। दोनों ही तेजपुंज, दयावान्, दुष्टनाशक और लोकसर्प तथा सर्पलोक के दर्पहारक हैं। गुण-गौरव से पूजित गरुड़ के सिवा भला त्रिभुवन में और कौन-सा वाहन विष्णु के लिये उपयुक्त होता? 'गरुड़' शब्द का दूसरा अर्थ 'विष का नाश करने वाला' भी है। विष की ज्वाला से जलते हुये इस विश्व-ब्रह्माण्ड में जो शक्ति जीवों का पाप-ताप दूर करती है, दुःख-दुष्कृति का विष उतार देती है, वही शायद गरुड़ के रूप में कल्पित कर ली गई है।

बम भोलानाथ महादेव के लिये 'बैल' से बढ़कर भला और कौन-सी सवारी सोची जा सकती थी? महादेव जैसे अवघड़ दानी हैं, वे या तो कभी नाराज ही नहीं होते, या जरा-सी बात में ही नाराज हो जाते हैं। बहुत से गुणों में उनका वाहन भी वैसा ही

है। बैल के लिये संस्कृत में 'वृष' शब्द भी आता है। उसका एक अर्थ 'धर्म' भी है। इस शब्द का यह गूढ़ अर्थ जब मस्तिष्क में चक्कर लगाने लगता है, तब धर्मारूढ़ विश्वेश्वर के चरण-कमलों में लोट जाने को किसके प्राण तैयार नहीं हो जाते ?

पवन का वाहन मृग है। मृग को संस्कृत में 'वातप्रेमी' भी कहते हैं। जिन्होंने कालिदास की आँखों से व्याघ्र के डर से, भागते हुए मृग छलाँगें भरते देखे हैं—वनमृग की वह वायु की गति को भी मात करने वाली मायाविनी गति देखी है; अर्थात्—उसे पल भर में नजरों के सामने और पल ही भर में दूर—बहुत दूर चले जाते देखा है, वे अवश्य ही मान लेंगे, कि वह वायु की सवारी के काम में आने योग्य अवश्य ही है।

यमराज की सवारी भैंसा है। क्रोधित हुए भैंसे की मूर्ति यम-राज से कम भयंकर नहीं होती। जिसने कभी गुस्से में आये हुए भैंसे को बेरोक तड़पते और शेर की तरह गरजते देखा है, वह मृत्यु के गले की आवाज जरूर सुन चुका है!

कुबेर का वाहन पुष्परथ है। यह भाव-सङ्गत भी मालूम पड़ता है; क्योंकि जहाँ कुबेर का खजाना हो, वहाँ तो चारों ओर फूल ही फूल नजर आने ही चाहियें। वहाँ पुष्प-वृष्टि न होगी, तो और कहाँ होगी ? वहाँ मनुष्य की दृष्टि फूलों के समान मधु बरसाती है, भाषा खिले हुए फूलों की बहार दिखलाती है, कर्तव्य-बुद्धि की कठोर मूर्ति भी पुष्प-रस-विलासिनी बन जाती है। वहाँ अन्धे का नाम नयनसुख, कुबड़े का नाम कल्पतरु, ढिठाई का नाम धर्म-बुद्धि,

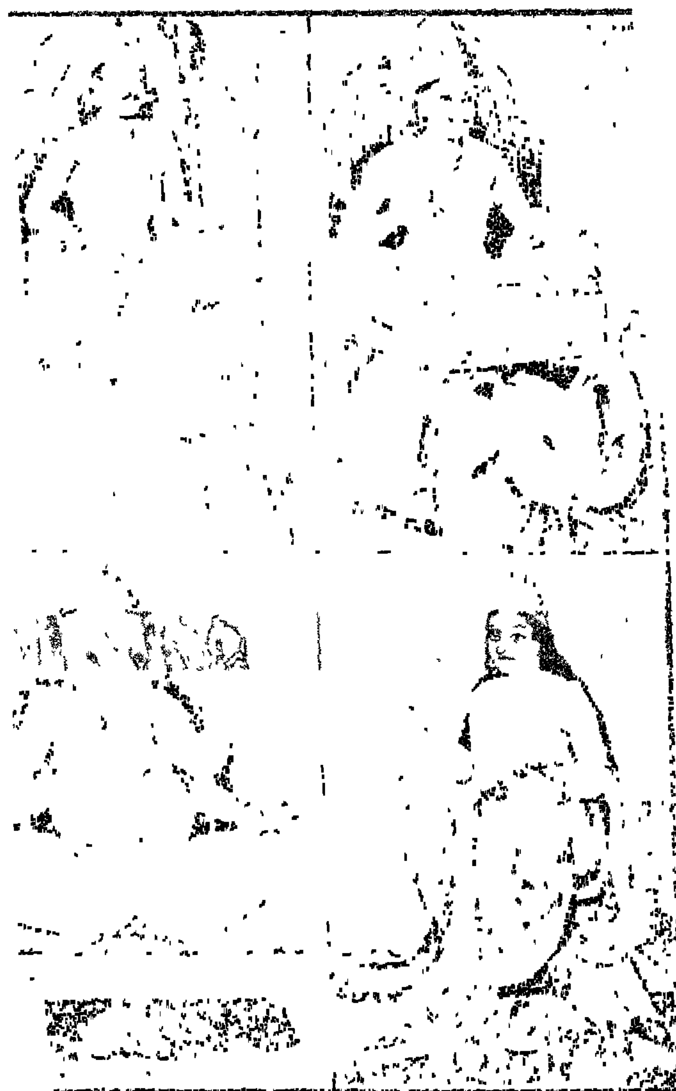
दुष्टता का नाम निडरपन, निर्दयता का नाम न्याय, बदसूरत का नाम रूपचन्द और रात का नाम दिन है।

इन्द्र का वाहन ऐरावत और शक्ति का वाहन सिंह है। दोनों में क्या ही चित्र नैपुण्य दिखलाया गया है! कार्तिकेय का वाहन मयूर है। रूप और गुण में दोनों ही एक दूसरे के योग्य हैं। जिस समय मोर अपने सुन्दर परों को फैला कर आनन्द और अभिमान से फूल उठता है, उस समय सिवा कार्तिकेय के और किसे उसकी पीठ पर बैठाया जा सकता है? और कार्तिकेय जिस समय सौन्दर्य की छटा से जगमगाते और रूप एवं तेज से संसार को समुज्ज्वल करते हैं, उस समय मयूर बिना और कौन उन्हें अपनी पीठ पर बैठा सकता है?

गणेश का वाहन चूहा है। यह देखने में भद्दा मालूम होने पर भी, इसका अर्थ बड़ा ही गूढ़ है। गणेश, गणपति हैं और गणपति होने के कारण ही सिद्धिदाता कहलाते हैं! इसलिये चूहा तो उनकी सवारी में होना ही चाहिये। भला कोई गणपति, चूहे के दाँतों से रास्ता साफ़ कराये बिना, नैतिक सम्पद् से भरे हुए स्वर्ग की सीढ़ी पर कहाँ चढ़ सकता है? इसीलिये पहले चूहा पीछे सिद्धिदाता। इसी से जो लोग मनुष्यों में चूहे की शकल और चाल-चलन के हैं, जिन्हें देखते ही जी कुढ़ जाता है, जिनके शरीर की गन्ध से नाक-भौं सिकुड़ जाती है, मन घृणा से भर उठता है, ऐसे लोग ही गणनायक कर्मवीरों के पासवान और प्यारे हुआ करते हैं!

यह सब तो समझ में आया ; पर एक बात समझ में नहीं आती। जिस मूर्ति को लोग वैकुण्ठ-विलासिनी की पार्थिव प्रतिमूर्ति मान कर पूजते हैं; उसके लिये ब्रह्माण्ड-भर के सब पशु-पक्षियों को छोड़कर उल्लू की ही सवारी क्यों ठीक की गई, यह बात तो किसी तरह बुद्धि में ही नहीं आती। मनुष्य ने जितनी तरह की देव-मूर्तियों की कल्पना की है, उन सब में लक्ष्मी की मूर्ति ही सब से अधिक मनमोहनी और मन:प्राण संजीवनी है—वह मानों आशा और आनन्द का मनोहर झरना है। ऐसी मनोहर मूर्ति के पैरों के नीचे भला एक बदसूरत उल्लू को क्यों बैठाया गया ? जिनके पैरों की धूल सिर पर रख कर देवता लोग भी आनन्दित हो जाते हैं, देवतुल्य ऋषि-गण भी कृतार्थ हो जाते हैं, संसार सुख-सम्पदा की सुमधुर हँसी से सन्ध्याकालिक कुसुम-कानन की कमनीय कान्ति धारण कर लेता है, जिनकी एक नजर से धरणी धन-धान्य से परिपूर्ण हो जाती है, जंगल भी नगर बन जाते हैं, राख से सोना पैदा होने लगता है, उन्हीं सौन्दर्य-समुज्ज्वल सुचित्रित प्रतिकृति के पैरों के पास उल्लू दास की-सी भयङ्कर बोली और बेडौल सूरत वाले पक्षी को भला किसने बैठाया ?

प्रश्न होने से ही उसका उत्तर भी पाया जाता है। इस प्रश्न का भी अवश्य ही कुछ-न-कुछ उत्तर होना चाहिये। परन्तु जो लोग संसार में सौभाग्य-दायिनी के उपासक समझे जाते हैं, उनकी बुद्धि बड़ी विचित्र होती है। कहीं-कहीं तो एक दम बुद्धि का अजीर्ण ही देखने में आता है। इसीलिए हमने चित्त को प्रबोध



देवताओं की सवारी

देने के लिए विमल बुद्धि वाले बाबा ज्ञानानन्द के उपदेश के अनुसार इसका एक उत्तर निश्चित किया है। यह उत्तर लक्ष्मी के लाड़लों के मन भायेगा या नहीं, सो हम नहीं कह सकते। हमें तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि चूँकि उल्लू दिवाभीत है; अर्थात् उजाले से डरने वाला और अन्धकार को चाहने वाला है, इसीलिये वह धन-धान्य विलासिनी सौभाग्य-लक्ष्मी का प्यारा वाहन बनाया गया है। संसारी मनुष्य प्रकृति-तत्व का मर्म न समझ सकने के कारण पृथ्वी की धूल समान धन-सम्पत्ति को ही लक्ष्मी का प्रसाद मानते और उसके लिये जान देते हैं। साथ ही यह बात भी प्रसिद्ध है, कि सांसारिक धन-सम्पत्ति का आना-जाना अँधेरे में ही होता है। वह नारियल के भीतर रहने वाले जल की तरह कब कैसे आ जाती है, यह कोई नहीं देख पाता। देखने के लिये बहुतेरे लोग सोना हराम कर, पूर्णिमा को रात-रात भर जागते रहते हैं, तो भी नहीं देख पाते; पर जब वह चुपचाप आकर घर में बैठ जाती है, तब सब लोग उसे देखते हैं और शहद के लालची भौंरों की तरह उसके चारों ओर भुनभुनाते हुये मँडराने लगते हैं। इधर जो लोग ब्रह्मा के चारों वेद, विष्णु की पालनी प्रीति, महादेव का आशुतोष भाव, पवन की द्रुतगति, यम की संहार-कारिणी-मूर्ति, इन्द्र का वज्र और शक्ति की तेजोराशि भूलकर केवल सौभाग्य-सम्पद् की ही आराधना करते हैं :—धर्म रहे या चूल्हे-भाड़ में जाय, दया हो या निर्दयता हो ; ज्ञान, मान और पौरुषी प्रतिष्ठा रहे या धूल में मिल जाय, तो भी हम तो धन की

आराधना करेंगे—ऐसा ही जिनका स्थिर संकल्प है, उनका भी आवागमन रात में ही होता है। वे लोग भी दिवाभीत आलोक-संकुचित और अन्धकार-प्रिय होते हैं। वे लोग कैसे क्या करते हैं, यह किसी की समझ में नहीं आता। वे किस तरह छोटे तिनके से बढ़ते-बढ़ते ताड़ की तरह बढ़ जाते हैं, इसका मर्म कोई नहीं जानता। जहाँ न्याय की ज्योति या नीति की रोशनी जगमगाती रहती है, वहाँ से वे या तो दुम दबा कर भाग जाते हैं, या उल्लू की तरह आँखें बन्द कर लेते हैं; जिससे उनकी निद्रा में बट्टा न लगे। जहाँ कातर मनुष्यों के करुणामय विलाप और शोक, दुःख की धारा बहती है, जहाँ विषाद और वेदना के कलेजे के दो टुकड़े कर देने वाले दृश्य दिखाई देते हैं, वहाँ भी वे उल्लू ही बन जाते हैं। जान भले ही चली जाय; पर वे आँखें उठा कर उस ओर कभी न देखेंगे; क्योंकि सम्भव है कि इसमें उनकी साधना का फल नष्ट हो जाय! उल्लू में इन्हीं लोगों की तरह गुण भरे हैं; इसीलिये वह लक्ष्मी का प्यारा वाहन माना गया है।

इसके सिवा उल्लू में और भी एक अपूर्व गुण है। उसके मुँह से सिवा 'नीम' के और कोई शब्द ही नहीं निकलता। सिवा इसके उसने और कोई ध्वनि सीखी नहीं। उसकी हर बात का शुरू और आख़ीर 'नीम' है। 'नीम' कैसी कड़वी चीज है—यह सारी दुनिया जानती है। वह भी इसीलिये कड़वी बातें सुनाता और 'नीम' का नाम लिया करता है। जो लोग रोशनी से डर कर अँधेरे में छिपे हुए, केवल अँधेरे में ही सम्पत्ति की आराधना करते हैं, उन

लोगों की सारी आशा, सारी आकांक्षा और समस्त उन्नतियों का अन्तिम परिणाम 'नीम' है अथवा नीम की तरह कड़वा है। तुमने अनाथ और असहाय बच्चों के मुँह का कौर और तन का वस्त्र छीनकर अपनी कुटिया में ही सारे सुख के सामान इकट्ठे कर लिये हैं; तो इसका परिणाम भी 'नीम' ही समझो। अथवा तुमने अगर शत-सहस्र मनुष्यों के दुःख-सन्तप्त निःश्वास से पाल उठाये हुए अपनी बहादुरी की नैया को बन्दरगाह पर लगा रखा होगा, तो तुम्हारे इस वैभव का परिणाम 'नीम' ही होगा। किसी ने अन्धे की तरह तुम्हारा विश्वास कर अपना सब कुछ तुम्हारे हाथों में सौंप दिया और तुमने अँधेरे में छिप-छिप कर उसे खूब चकमे दिये और अब फूलों की सेज पर सो रहे हो; पर इस ऐश का नतीजा भी 'नीम' ही होगा। अथवा अगर तुमने अपने आश्रय देनेवाले की देह में जोंक की तरह चिपट कर, उसका सारा खून पी कर अपनी तोंद फुलाई होगी तो इसका नतीजा भी 'नीम' ही समझो। तुम सच को झूठ और झूठ को सच बना कर सम्पदा के स्वर्ण-पर्यङ्क पर शयन कर रहे हो; पर सच जानो, इस सम्पदा का परिणाम भी 'नीम' है। अथवा तुम द्वार पर आये हुए दुःखियों और पड़ोस में रहने वाले ग़रीब पड़ोसियों की ठंडी आहों और फर्यादों की तरफ़ से कान बहरे किये हुए आप हलवा-पूरी आदि मजेदार खाने खा-खा कर मोटे होते चले जाओगे, तो इस लोभ का परिणाम भी 'नीम' होगा। और अगर तुमने बदनामी का टीका सिर पर लगा कर, यश के बदले प्रभुत्व पाया होगा, तो इस

प्रभुत्व का परिणाम भी 'नीम' ही होगा। तुम विचार के नाम पर ठग बन कर अगर राक्षसों के चाचा बनना चाहोगे, तो इसका भी परिणाम 'नीम' है।

प्रश्न

१—दुष्कृति, समुज्ज्वल और प्रतिमूर्ति में कौन-कौन से उपसर्ग लगे हैं, इनका क्या अर्थ है?

२—ब्रह्मा का वाहन हंस क्यों माना गया है?

३—विष्णु का वाहन गरुड़ और महादेव का वाहन बैल क्यों माना गया है?

४—गणेश का वाहन क्या है?

५—लक्ष्मी जैसी सुन्दरी के लिये उल्लू जैसा भद्दा वाहन क्यों माना गया है? इसमें क्या रहस्य है?

६—उल्लू के मुँह से क्या शब्द निकलता है? इसका क्या तात्पर्य है?

अभ्यास

१—अर्थ बताओ और अपने वाक्यों में इनका प्रयोग करो—

कल्पित, दुष्कृति, पार्थिव, धर्मारूढ़, प्रतिमूर्ति।

२—स्पष्ट करो—

जिनके पैरों की धूल······किसने बैठाया? (दे० अनुच्छेद नं० १०)

३—वाक्य-विश्लेषण करो—

"अगर तुम दुधमुँहे बच्चों ...... परिणाम भी 'नीम' होगा।"

(दे० अंतिम अनुच्छेद)

४—इन्द्र के ५ पर्य्यायवाची शब्द बताओ।

५—देवताओं की सवारी पर एक छोटा सा निबन्ध लिखो।

६—मृग के 'वात-प्रेमी' नाम की सार्थकता समझाओ।

—:०:—

११—ज्योति-गृह और प्रकाश-पोत

[इस पाठ में ज्योति-गृहों के निर्माण की आवश्यकता, उनकी उपयोगिता, और प्रकाश प्रबन्ध विधि का सुन्दर वर्णन है। ऐसे ही उपायों से मनुष्य ने समुद्र पर विजय पाई है।

इस प्रकार की अन्य बातें 'समुद्र पर विजय' नामक पुस्तक में पढ़ो]

महासागर विस्तृत जलखंड है, जिसकी गहराई बहुत अधिक है। इस कारण इसे लोग अगाध कहते हैं। परन्तु यह सब जगह एक-सा गहरा नहीं है। कहीं तो यह इतना अधिक गहरा है कि उसकी थाह लगा सकना बहुत कठिन है और कहीं बिलकुल उथला है। जिस प्रकार स्थलखंड में कहीं तो टीले होते हैं, कहीं ऊँचे-ऊँचे पर्वत होते हैं और कहीं बड़े-बड़े गड्ढे होते हैं, उसी प्रकार समुद्र का तल भी नीचा-ऊँचा है। उसमें कहीं तो ऊँचे रेतीले मैदान हैं

जिनके ऊपर उथला पानी है और कहीं पानी में छिपी हुई बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं जिनके ऊपर पहाड़ की चोटियाँ पानी के भीतर छिपी हुई हैं। इन चट्टानों और पहाड़ियों की नोकीली चोटियों से टक्कर खाकर जलयान टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। समुद्री यात्रियों को इन गुप्त संकटों के कारण बड़ी-बड़ी बाधाओं का सामना करना पड़ता था। अतएव इन संकटों से बचने के लिए मनुष्यों ने ज्योति-गृहों का जन्म दिया।

जलयान पानी में चल सकें इसके लिए इतने गहरे पानी की आवश्यकता होती है कि उसका पेंदा तलहटी को न छूले। यदि उथला पानी हुआ तो जलयान पानी में तैर न सकेगा। इतने उथले पानी में बड़े-बड़े जलयानों के मिट्टी में धँस जाने पर कोई युक्ति काम नहीं कर सकती। ऐसे स्थानों से सचेत रहने के लिये तैरते हुए ज्योति-गृहों की आवश्यकता थी। पोत-स्थलों और निर्दिष्ट स्थानों पर पहुँचने के लिए भी जलयानों को ऐसे संकेत की आवश्यकता थी जिनकी सहायता से रात को अँधेरे में भी वे वहाँ पहुँच सकें। इस कारण उन स्थानों में ज्योति-गृह निर्मित किये गये।

प्राचीन काल में नाविकों ने इन असुविधाओं को दूर करने के लिए कुछ-कुछ अवश्य ही यत्न किया होगा, परन्तु उन यत्नों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। पाश्चात्य देशों में मिश्र देश के निकट ज्योति गृहों के होने का पता चलता है। उनमें अधिक प्रसिद्ध फैरोज-द्वीप पर बना हुआ ज्योति-गृह था जिससे सिकंदरिया जाने

वाले जलयानों के मार्ग में उसके कँगूरे की सूचना मिलती थी। यह संगमरमर का बना हुआ और ६० फुट ऊँचा था। इसके ऊपर दिन-रात लकड़ी जलती रहती थी जिससे रात को तो इसके प्रकाश से नाविकों को कँगूरे की सूचना मिलती थी और दिन को उसका धुआँ ही उन्हें सचेत करता था।

इस ज्योति-गृह का निर्माण ईसवी सन् से तीन सौ वर्ष पूर्व हुआ था। और डेढ़ सहस्र वर्ष तक समुद्र-यात्रियों का पथ-प्रदर्शन करने के पश्चात् एक बार भूडोल के कारण यह गिर गया। इसके गिरने के पश्चात् फ़ैरोज़ द्वीप में इसके स्थान पर कई बार ज्योति-गृह निर्मित किये गये। फ़ैरोज़-द्वीप के ज्योति-गृह ने इतना गौरव प्राप्त किया कि जब अन्य स्थानों पर ज्योति-गृह का निर्माण हुआ तो लोगों ने ज्योति-गृह का अर्थ प्रकट करने के लिए उन्हें 'फ़ैरोज़' नाम से ही प्रसिद्ध किया। बहुत दिनों तक इनमें प्रकाश के लिए लकड़ी का ही उपयोग होता रहा, परन्तु पीछे कोयले ने लकड़ी का स्थान ग्रहण किया। आधुनिक युग में प्रकाश के लिए लकड़ी और कोयले के स्थान पर तेल और विद्युत् का उपयोग होता है।

नाविकों ने संसार के प्रायः सभी सागरों को छान डाला है और सभी ज्ञात समुद्री चट्टानों और छिपी हुई पहाड़ियों की चोटियों पर ज्योति-गृह बन गये हैं जिनमें प्रकाश का प्रबन्ध करने के लिए निरंतर दो या तीन व्यक्ति रहते हैं। उनके रहने के लिए उसी में सारी व्यवस्था रहती है। महीने में एक या दो बार उनके

पास जलयानों द्वारा भोजन आदि की सामग्री पहुँचा दी जाती है। अगर ये जलयान इन तक सामान पहुँचाने में विलम्ब कर दें तो इनको भूखों मरना पड़े।

इनका काम बहुत उत्तरदायित्व का होता है। यदि तनिक सी उपेक्षा करने से रात को किसी समय प्रकाश बुझ जाय तो किसी पोत के चट्टान से टकरा जाने पर न मालूम कितने मनुष्यों की जान चली जाय। इस कारण बारी-बारी से रात भर जागते रह कर उन्हें इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि किसी प्रकार ज्योति-गृह का प्रकाश बुझने न पावे।

प्रकाश करने के लिये या तो इंजन से पंप द्वारा तेल ऊपर भेजते हैं या यन्त्रों द्वारा उत्पन्न हुई विद्युत् ऊपर पहुँचाई जाती है। इनका प्रकाश इतनी चकाचौंध उत्पन्न करने वाला होता है कि इन्हें देखने पर कभी-कभी लोग पागल हो जाते हैं। इस कारण ज्योति-गृह में दो या तीन आदमी रक्खे जाते हैं जिससे एक के अशक्त हो जाने पर या मृत हो जाने पर दूसरे आदमी प्रकाश का प्रबन्ध कर सकें। जब इस प्रकार का कोई संकट आ उपस्थित होता है तो काले झंडे हिला कर संकेत करते हैं, जिससे उनकी सहायता के लिए पोत पहुँच जाएँ। अब प्रायः सभी ज्योति-गृहों पर बेतार के तार भी लग गये हैं जिनसे दूर के मनुष्यों से बातचीत की जा सकती है। इन ज्योति-गृहों का प्रकाश १७-१८ मील तक दिखायी पड़ता है जिसे देखकर पोत सावधान हो जाते हैं।

प्रत्येक ज्योति-गृह में भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकाश का प्रबन्ध





ज्योति-गृह एडीस्टोन

रहता है। किसी में थोड़ी देर तक रुक-रुक कर प्रकाश होता है, किसी में प्रकाश नाचता हुआ रहता है और किसी में लगातार दो बार चमक होने के पश्चात् थोड़ी देर अँधेरा रहता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकाश का प्रबन्ध रहता है जिसका ब्योरा पोत में लिखा हुआ रहता है। इस कारण किसी ज्योति-गृह के प्रकाश के ढंग को देख कर नाविक इस बात को तुरंत जान जाते हैं कि वे कहाँ जा रहे हैं।

ज्योति-गृहों का निर्माण करने के लिये बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। निर्माण-कार्य के लिये शांत वायु-मंडल का होना आवश्यक है परन्तु समुद्र अधिकतर अशांत रहता है। इस कारण थोड़े-थोड़े समय तक ही काम हो सकता है। इस तरह बहुत दिन तक काम लगा रहता है। समुद्र की लहरें बहुत प्रचंड होती हैं। उनसे बचने के लिये ज्योति-गृहों के बनाने में बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है।

इंगलैंड का प्रसिद्ध ज्योति-गृह एडीस्टोन है। यह तीन बार बना और तीनों बार समुद्र ने इसे नष्ट कर दिया। चौथी बार बनने के पश्चात् अब वह खड़ा है। उसके समीप ही पहले के बने ज्योति-गृह का चिन्ह दिखलायी पड़ता है। यह जिस चट्टान के समीप बना हुआ है वहाँ समुद्र की लहरें बहुत ऊँचे तक उठती हैं और चट्टान से टकरा कर समुद्र का पानी तीस-चालीस फुट ऊँचाई तक पहुँचता है। पहले-पहल सन् १६९६ ई० में वहाँ पर ज्योति-गृह का निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ था जो चार वर्ष में समाप्त हुआ। इसके

बनाने वाले कारीगर को अपने निर्माण-कौशल का बड़ा गर्व था परंतु कुछ ही वर्षों पश्चात् सन् १७०३ ई० में समुद्र ने उग्र रूप धारण करके ज्योति-गृह को बहा दिया। दूसरा ज्योति-गृह १७०८ ई० में बना, परंतु ४६ वर्ष पश्चात् आग लग जाने से वह भी नष्ट हो गया। तीसरी बार दो वर्ष परिश्रम के पश्चात् लकड़ी के स्थान पर पत्थर का पक्का ज्योति-गृह सन् १७५७ ई० में निर्मित हुआ। धीरे-धीरे इससे नीचे की चट्टान को समुद्र की लहरों ने काट काट कर पतला कर दिया और इसके गिरने की आशंका हुई। इस कारण सन् १८७७ ई० में इससे कुछ दूर हट कर चौथे ज्योति-गृह का निर्माण हो सका जो अब तक खड़ा है।

पूर्वकाल में ज्योति-गृह के स्थान पर घंटा बजाकर जलयानों को संकट से सावधान करते थे परन्तु अब प्रकाश से ही यह काम लिया जाता है। कभी-कभी जब घना कोहरा छा जाता है तो उस अवस्था में प्रकाश काम नहीं दे सकता; क्योंकि अधिक घने कुहरे में तीव्र प्रकाश भी कुछ दूर तक ही दिखलाई पड़ सकता है। इस अवस्था में ज्योति-गृह पर यन्त्रों द्वारा घण्टे बजाये जाते हैं, जिन्हें सुनकर जलयान संकट से दूर हो जाते हैं।

जिन स्थानों पर पहाड़ी चोटियों से सावधान करने के लिये ज्योति-गृहों की आवश्यकता होती है, वहाँ तो गोलाकार दृढ़ ज्योति-गृह निर्मित किये जाते हैं; परन्तु जहाँ उथले पानी में बालू के मैदान होते हैं, जिनमें फँस जाने से जलयान संकट में पड़ जाते हैं, उन स्थानों से सावधान करने के लिये, ज्योति-गृहों का

निर्माण नहीं हो सकता। उन स्थानों में या तो बड़े-बड़े लट्ठे गाड़ कर प्रकाश करने की व्यवस्था की जाती है या वहाँ प्रकाश-पोत रक्खे जाते हैं। इन प्रकाश-पोतों में भारी लंगर डाल दिये जाते हैं, जिससे वे स्थानान्तरित न हो सकें। उनके एक मस्तूल पर लैम्प होता है और जहाज में चौकीदार नीचे रहते हैं।

ज्योति-गृहों का प्रबन्ध भिन्न राज्यों की ओर से होता है और व्यय के लिये जलयानों से कर लिया जाता है। जो लोग समुद्र की भीषण भयंकर लहरों के मध्य संकटापन्न रहते हुए भी साहस-पूर्वक जीवन व्यतीत कर समुद्री यात्रियों का पथ-प्रदर्शन करते हैं वे सब धन्यवाद के पात्र हैं। यदि किसी साधारण व्यक्ति को इन निर्जन स्थानों में रहना पड़े तो पहले दिन ही उसका साहस छूट जाय।

प्रश्न

१—ज्योति-गृहों का निर्माण क्यों किया गया ?

२—प्राचीन काल में समुद्र के संकटों से बचने के लिये लोगों ने क्या प्रयत्न किया होगा ? फ़ैरोज़-द्वीप पर बने हुए ज्योति-गृह से क्या सूचित होता है ?

३—ज्योति-गृहों में प्रकाश का प्रबन्ध किस प्रकार होता है ? इनमें काम करनेवालों की सुविधा के लिए क्या-क्या प्रयत्न किए गए हैं ?

४—ज्योति-गृहों के निर्माण में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ?

बनाने वाले कारीगर को अपने निर्माण-कौशल का बड़ा गर्व था. परंतु कुछ ही वर्षों पश्चात् सन् १७०३ ई० में समुद्र ने उग्र रूप धारण करके ज्योति-गृह को बहा दिया। दूसरा ज्योति-गृह १७०८ ई० में बना, परंतु ४६ वर्ष पश्चात् आग लग जाने से वह भी नष्ट हो गया। तीसरी बार दो वर्ष परिश्रम के पश्चात् लकड़ी के स्थान पर पत्थर का पक्का ज्योति-गृह सन् १७५७ ई० में निर्मित हुआ। धीरे-धीरे इससे नीचे की चट्टान को समुद्र की लहरों ने काट काट कर पतला कर दिया और इसके गिरने की आशंका हुई। इस कारण सन् १८७७ ई० में इससे कुछ दूर हट कर चौथे ज्योति-गृह का निर्माण हो सका जो अब तक खड़ा है।

पूर्वकाल में ज्योति-गृह के स्थान पर घंटा बजाकर जलयानों को संकट से सावधान करते थे परन्तु अब प्रकाश से ही यह काम लिया जाता है। कभी-कभी जब घना कोहरा छा जाता है तो उस अवस्था में प्रकाश काम नहीं दे सकता; क्योंकि अधिक घने कुहरे में तीव्र प्रकाश भी कुछ दूर तक ही दिखलाई पड़ सकता है। इस अवस्था में ज्योति-गृह पर यन्त्रों द्वारा घण्टे बजाये जाते हैं, जिन्हें सुनकर जलयान संकट से दूर हो जाते हैं।

जिन स्थानों पर पहाड़ी चोटियों से सावधान करने के लिये ज्योति-गृहों की आवश्यकता होती है, वहाँ तो गोलाकार दृढ़ ज्योति-गृह निर्मित किये जाते हैं; परन्तु जहाँ उथले पानी में बालू के मैदान होते हैं, जिनमें फँस जाने से जलयान संकट में पड़ जाते हैं, उन स्थानों से सावधान करने के लिये, ज्योति-गृहों का

निर्माण नहीं हो सकता। उन स्थानों में या तो बड़े-बड़े लट्ठे गाड़ कर प्रकाश करने की व्यवस्था की जाती है या वहाँ प्रकाश-पोत रक्खे जाते हैं। इन प्रकाश-पोतों में भारी लंगर डाल दिये जाते हैं, जिससे ये स्थानान्तरित न हो सकें। उनके एक मस्तूल पर लैम्प होता है और जहाज़ में चौकीदार नीचे रहते हैं।

ज्योति-गृहों का प्रबन्ध भिन्न राज्यों की ओर से होता है और व्यय के लिये जलयानों से कर लिया जाता है। जो लोग समुद्र की भीषण भयंकर लहरों के मध्य संकटापन्न रहते हुए भी साहस-पूर्वक जीवन व्यतीत कर समुद्री यात्रियों का पथ-प्रदर्शन करते हैं वे सब धन्यवाद के पात्र हैं। यदि किसी साधारण व्यक्ति को इन निर्जन स्थानों में रहना पड़े तो पहले दिन ही उसका साहस छूट जाय।

प्रश्न

१—ज्योति-गृहों का निर्माण क्यों किया गया ?

२—प्राचीन काल में समुद्र के संकटों से बचने के लिये लोगों ने क्या प्रयत्न किया होगा ? फ़ैरोज़-द्वीप पर बने हुए ज्योति-गृह से क्या सूचित होता है ?

३—ज्योति-गृहों में प्रकाश का प्रबन्ध किस प्रकार होता है ? इनमें काम करनेवालों की सुविधा के लिए क्या-क्या प्रयत्न किए गए हैं ?

४—ज्योति-गृहों के निर्माण में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ?

५—इंगलैंड का सब से प्रसिद्ध ज्योति-गृह कौन सा है ? उसके विषय में तुम क्या जानते हो ?

६—ज्योति-गृहों का प्रबन्ध किस प्रकार होता है ?

अभ्यास

१—वाक्यों में प्रयोग करो—

स्थानान्तरित, प्रचण्ड, संकटापन्न, निर्दिष्ट, निर्माण-कौशल।

२—'जलयान' शब्द किस प्रकार बना है ? ऐसे ही दो शब्द और बनाओ।

३—वाक्य-विश्लेषण करो—

"यदि किसी साधारण व्यक्ति को इन निर्जन स्थानों में रहना पड़े तो पहले दिन ही उसका साहस छूट जाय।"

४—फैरोज़-द्वीप पर बने हुए ज्योति-गृह का संक्षेप में वर्णन करो।

आदेश

अत्याचार अनेक दानवों के मनमाने,
जब न अधिक सह सके देवता शान्त सयाने।
चेत हुआ तब उन्हें, क्योंकि थे वे बहु ज्ञानी,
और अवस्था हीन उन्होंने अपनी जानी।

उपर्युक्त छद पढ़ो। इसमें देखो 'जब' के पश्चात् उसका नित्य सम्बन्धी पद 'तब' प्रयुक्त हुआ है। 'जब' के उपरान्त 'तो' का प्रयोग व्याकरण-विरुद्ध होने से अशुद्ध है। 'तो' 'यदि' का नित्य सम्बन्धी है। "जब वह

घर से चला तब उसका पुत्र दो मास का हो चुका था।" इस वाक्य में 'जब'—'तब' का शुद्ध प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत पाठ में इस नियम का कहीं कहीं उल्लंघन हुआ है, उसे देखो और सुधार कर पढ़ो।

—:o:—

१२—ग्राम

[खड़ी बोली हिन्दी की कविताओं में माधुर्य लाने का श्रेय जिन कवियों को प्राप्त है, उनमें ठा० गोपालशरणसिंह जी का प्रमुख स्थान है। आप सुप्रसिद्ध कवि, साहित्य मर्मज्ञ, और विद्वान् हैं। आपको ग्राम और ग्रामीणों की वास्तविक परिस्थिति का अच्छा अनुभव है। इस पाठ में दी हुई कविता आप ही की रचना है। इसमें ग्रामों का गुण-ग्राम देखो।

माधवी, मानवी, कादंबिनी, सुमना में आपकी रचनाओं का आनन्द लो]

प्रकृति-सुन्दरी की गोदी में
खेल रहा तू शिशु-सा कौन?
कोलाहल-मय जग को हरदम,
चकित देखता है तू मौन।
जग के भोलेपन का प्रतिनिधि,
सहज सरलता का आख्यान;

विमल स्रोत मानव-जीवन का,
तू है विधि का करुण-विधान।
छिपा मही के मृदु अञ्चल में,
जग का मूर्ति-मान अनुराग;
तुझसे ही सीखता जगत है,
औरों के हित करना त्याग।
भोली ललनाओं से लालित,
विश्व-पुष्प का पुष्प-पराग।
कृषकों के श्रम-जल से सिंचित,
जग का छोटा-सा है बाग।
होकर भी असभ्य तू ही है,
विश्व-सभ्यता का आधार।
स्वावलम्ब की समुचित शिक्षा,
पाता तुझसे है संसार।
सरल बालकों का क्रीड़ा-स्थल,
जगती के कृषकों का प्राण;
करता है इस विपुल विश्व का,
तू ही सदा क्षुधा से त्राण।
मानवता का प्रेम-निकेतन,
आदि सभ्यता का इतिहास;
भ्रातृ-भाव, समता, क्षमता का,
तू है अवनी में अधिवास।

भोली चितवन से तू जग को,
सदा देखता है अविकार।
सब के लिए खुला रहता है,
सन्तत तेरे उर का द्वार।
दया-क्षमा-ममता आदिक हैं,
तेरे रत्नों के भाण्डार;
है निर्मल जल, शुद्ध वायु ही,
तेरे जीवन के उपहार।
छल से रहता दूर किन्तु तू,
बल-पौरुष में है भरपूर;
तेरे जीवन-धन हैं जग में,
बस किसान एवं मजदूर।
जग को जगमग करने वाला,
है तुझमें न प्रकाश महान;
पर मिट्टी के ही दीपक से,
रहता है तू ज्योतिष्मान।
काँटे चुभते रहते ही हैं,
उड़ती रहती तुझ पर धूल;
तो भी तू न मलिन होता है
विश्व-वाटिका का मृदु फूल।
रखकर सबसे निपट निराला,
जगती-तल में निज व्यक्तित्व,

करता है तू सफल सर्वदा,
अपना छोटा-सा अस्तित्व ॥

प्रश्न

१—कवि ने ग्राम को भोलेपन का प्रतिनिधि क्यों कहा है ?

२—ग्राम मानव-जीवन का विमल स्रोत किस प्रकार है ?

३—ग्राम मनुष्य को औरों के लिए त्याग करने की शिक्षा किस प्रकार देता है ?

४—कवि ने ग्राम को असभ्य कहकर भी विश्व-सभ्यता का आधार क्यों कहा है ?

५—स्वावलम्बन और ग्राम्य-जीवन का आपस में क्या सम्बन्ध है ?

अभ्यास

१—इस कविता में तुम्हें सबसे सुन्दर पद कौन-सा लगा है, कारण सहित बताओ।

२—इस पाठ में कौन-सा स्थल तुम्हें विशेष रुचिकर प्रतीत होता है कारण सहित बताओ।

३—भारत के ग्राम्य जीवन पर एक छोटा-सा निबन्ध लिखो।

४—आख्यान, श्रम, जल और ज्योतिष्मान को अर्थ सहित अपने शब्द-कोष में लिख लो।

—:०:—

१३—आदर्श बदला

[इस कहानी में लेखक ने एक ऐतिहासिक तथ्य का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। बदला लेने का उच्च आदर्श इसमें देखो।

लेखक हैं श्री सुदर्शन। आपको कहानी, उपन्यास, नाटक, तथा गीति काव्य लिखने में अच्छी ख्याति मिली है। इस समय आप सिनेमा-क्षेत्र में गीत लिख रहे हैं। इस क्षेत्र में भी आपको अच्छी सफलता मिली है। आपकी अन्य कहानियाँ सुदर्शन-सुधा, सुदर्शन-सुमन आदि में पढ़ो]

(१)

प्रभात का समय था। जीवन की रश्मियाँ आकाश से बरसती हुई प्राणीमात्र में नवीन उमंगों का संचार कर रही थीं। बारह घंटों के लगातार संग्राम के अनन्तर प्रकाश ने अंधकार पर विजय प्राप्त की थी। इस आनन्द में बाग के फूल झूम रहे थे और पक्षी-गण मधुर संगीत में मस्त थे। वृक्षों की शाखाएँ सुगंधित पवन में खेलती थीं और पत्ते हर्ष से तालियाँ बजाते थे। प्रकाश का राज्य था और सर्वत्र आनन्द की वर्षा हो रही थी।

इतने में साधुओं की एक मण्डली नगर के अन्दर पधारी। ये स्वतंत्र-प्रकृति, ईश्वर के भक्त और हरि-भजन में मतवाले हुए, संसार का परित्याग कर चुके थे और अपवर्ग की इच्छा से मन की वासनाओं को इधर-उधर न भटकने देते थे। मन बड़ा चंचल है। यदि काम न हो तो इधर-उधर भटकने लगता है और अपने स्वामी को विनाश के मार्ग में फँसा कर मार डालता है। इसे

भक्ति की जंजीरों से जकड़ देना चाहिए, नहीं तो सर्प बन कर डस लेता है और बिच्छू बनकर काट खाता है।

जो संसार को त्याग चुके थे उनको सुर-ताल की क्या परवाह थी। कोई तान ऊपर चढ़ाता था कोई मुँह से गुनगुनाता था। ये अपने राग में मगन थे कि सिपाहियों ने आकार घेरा डाल दिया और हथकड़ियाँ पहना कर उन्हें दरबार-अकबरी को ले चले। इस समय आगरे के सिंहासन पर अकबर था और उसके प्रसिद्ध गवैये तानसेन ने यह आज्ञा दिला रक्खी थी कि जो मनुष्य गान-विद्या में मेरी बराबरी न कर सके वह आगरे की सीमा के अन्दर गा न सके और जो गाये उसके प्राण हर लिये जायँ। बेचारे वनवासी साधुओं को इसका पता न था। परन्तु अज्ञानता भी एक अपराध है। अभियोग दरबार में पेश हुआ। तानसेन ने गान-विद्या के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न किये, साधु उत्तर में मुँह ताकने लगे। अकबर के होठ हिले और सब के सब साधु तानसेन की दया पर छोड़ दिये गये। उसमें दया का भाव निर्बल था, सँभल न सका, मृत्यु-दंड की आज्ञा हुई। केवल एक दस वर्ष का बालक छोड़ा गया। बालक है, इसका दोष नहीं। यदि है भी तो क्षमा के योग्य है।

(२)

बालक रोता हुआ आगरे के बाजारों से निकला और सिर पीटता हुआ जंगल में जाकर अपनी कुटिया में लेट कर तड़पने लगा—बाबा! तू कहाँ है। अब कौन मुझे प्यार करेगा और कौन मुझे भक्ति का मार्ग बतलायेगा? मेरा बाबा छीन लिया और

मुझे इस अथाह बृहत्संसार में अनाथ बना कर छोड़ दिया। तू कहा करता था कि संसार में पद-पद पर दलदल है और चप्पे-चप्पे पर कंटकावृत्त झाड़ियाँ हैं जहाँ मनुष्य फिसल जाता है और काँटों में उलझ जाता है। अब मेरा कौन पालन-पोषण करेगा और इन घोर संकटों से रक्षा करेगा।

इन्हीं विचारों में डूबा हुआ बालक देर तक रोता रहा। इतने में खड़ाऊँ पहने हुए, हाथ में माला लिये हुए, राम राम जपते बाबा शंकरानंद कुटिया के अन्दर आये और कहने लगे—बैजू बेटा! शान्ति ग्रहण करो।

बैजू घबरा कर उठा और नवागत महात्मा के चरणों से लिपट गया। दुःख में यदि कोई तनिक-सी भी सहानुभूति प्रकट करे तो आँसुओं की धारा बहने लगती है। बिलख-बिलख कर रोते हुए बैजू ने कहा—महाराज! मेरे साथ अनर्थ हुआ है। मुझ पर बज्र गिरा है।

शंकरानद बोले—शांतिः शांतिः।

बैजू रोते हुए बोला—महाराज! तानसेन ने मुझे तबाह कर दिया।

शंकरानंद ने कहा—शांतिः शांतिः।

बैजू ने चरणों से लिपट कर कहा—महाराज! शांति हो चुकी। अब मुझे प्रतिहिंसा की इच्छा है। प्रतीकार की आकांक्षा है।

शंकरानंद ने फिर कहा—बेटा शांतिः शांतिः।

बैजू ने अश्रु-परिप्लुत नेत्रों को ऊपर उठाया और बाबा जी की ओर देखा, फिर कुछ बिन्दु आँसुओं के टपकाये। जो कार्य वाणी नहीं कर सकती उसे दृष्टि कर देती है और जहाँ दृष्टि भी असमर्थ हो जाती है वहाँ आँसू काम देते हैं। ये दो अंतिम शस्त्र हैं। इन्हीं का प्रयोग कर के बैजू ने नेत्र झुका लिये।

शंकरानंद के धैर्य की भीति आँसुओं की बौछार न सह सकी, काँप कर गिर गई। उन्होंने बैजू को उठा कर हृदय से लगाया और कहा—तुझे वह शस्त्र दूँगा जिससे तू अपने पिता की मृत्यु का बदला ले सके।

बैजू उछल पड़ा और बोला—कहाँ है वह शस्त्र।

शंकरानंद ने कहा—उसके लिए १० वर्ष तपस्या करनी होगी।

बैजू ने कहा—मैं इस समय अंधा हो रहा हूँ। दस वर्ष क्या मैं अपने को अनंत जन्म तक प्रतिहिंसा की वेदी पर बलिदान कर सकता हूँ। विपत्तियाँ उठाऊँगा, कष्ट सहूँगा, भक्ति करूँगा, तप करूँगा, परन्तु वह शस्त्र अवश्य लूँगा जिससे प्रतिहिंसा की अग्नि शांत हो जाय। क्या केवल दस वर्ष के पश्चात् वह मिल जायगा?

शंकरानंद ने कहा—हाँ।

बैजू झुक गया—स्वर्गीय दूत! तेरा उपकार आजन्म न भूलेगा।

(२)

ऊपर की घटना को बारह वर्ष बीत गये। जगत् में बहुत से

परिवर्तन हो गये। कई बस्तियाँ उजड़ गईं, वन बस गये; बूढ़े मर गये, नवीन व्यक्ति उत्पन्न हो गये, जो तरुण थे उनके केश श्वेत हो गये।

बैजू बावरा तरुण हो चुका था और गान-विद्या में दिन पर दिन आगे बढ़ रहा था। उसके स्वर में जादू भर चुका था और तान में एक आश्चर्यमयी मोहनी आ गई थी। गाता था तो पत्थर तक पिघल जाते और पक्षी तक मुग्ध हो जाते थे। सुनने वाले स्तब्ध होकर खड़े रह जाते थे। एक दिन शंकरानंद ने हँस कर कहा—मेरे पास जो कुछ था तुझे दे डाला। बैजू! तू पूर्ण गंधर्व हो गया है। अब मेरे पास और कुछ नहीं है।

बैजू हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। कृतज्ञता का भाव आँसुओं के रूप में बह निकला। चरणों पर सिर रखकर बोला—महाराज! आपका उपकार जन्म भर सिर से न उतरेगा।

शंकरानंद सिर हिला कर कहने लगे—यह नहीं कुछ और...।

बैजू ने कहा—महाराज कहें।

शंकरानंद बोले—प्रतिज्ञा करो।

बैजू ने बिना सोचे-विचारे कह दिया—प्रतिज्ञा करता हूँ कि...।

शंकरानंद ने वाक्य को पूरा किया—इस राग-विद्या से किसी को हानि न पहुँचाऊँगा।

बैजू का रक्त सूख गया, पैर लड़खड़ाने लगे और कामनाओं की वाटिका सूखती हुई दिखाई दी। बारह वर्ष के परिश्रम पर पानी फिर गया। प्रतिहिंसा की छुरी हाथ आई तो गुरु ने एक

प्रतिज्ञा लेकर कुंद कर दी। बैजू ने होंठ काटे, दाँत पीसे, वह रक्त का घूंट पीकर रह गया।

(४)

एक सुन्दर नवयुवक साधु आज आगरे के बाजारों में गाता हुआ जा रहा है। दूकानदारों और राहगीरों ने समझा कि मृत्यु इसके सिर प- खेल रही है। वे उठे कि उसे नगर की आज्ञाओं से सूचित करें, परन्तु निकट पहुँचने से पूर्व ही मुग्धावस्था को प्राप्त होकर अपने आपको भूल गये और किसी का साहस न हुआ कि उससे कुछ कहें। यह समाचार नगर में दावानल के समान फैल गया कि एक रागी साधु आया है जो बाजारों में गा रहा है।

सिपाहियों ने हथकड़ियाँ सँभाल लीं और पकड़ने के लिए साधु की ओर आये, परन्तु पास आना था कि रंग पलट गया। साधु के मुख-मंडल से तेज की रश्मियाँ फूट-फूट कर निकल रहीं थीं, जिनमें जादू था, मोहनी थी और मुग्ध करने की शक्ति थी। सिपाहियों को न अपनी सुधि रही, न हथकड़ियों की, न अपने बल की, न अपने कर्तव्य की। वे आश्चर्य से उसके मुख की ओर देखने लगे, जहाँ सरस्वती का वास था और जहाँ से संगीत की मधुर-ध्वनि की धारा बह रही थी।

साधु मस्त था और सुनने वाले भी मस्त थे। गाते-गाते साधु भी धीरे-धीरे चलता जाता था और श्रोताओं का समुद्र भी शनैः शनैः तरंगित हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानों एक समुद्र है

जिसे नवयुवक साधु अपने स्वर की जंजीरों से खींच रहा है और संकेत से अपने साथ-साथ आने की प्रेरणा कर रहा है।

मुग्ध जन समुदाय चलता गया, परन्तु पता नहीं कि किधर को। जब एकाएक गाना बन्द हो गया, जादू का ताँता टूट गया, तब लोगों ने देखा कि तानसेन के महल के आगे खड़े हैं। उन्होंने दुःख पश्चाताप से हाथ मले—हाय रे! यह कहाँ आ गये। साधु अज्ञान से ही मृत्यु के द्वार पर आ पहुँचा। महाकाय कृष्णफणि के मुखविवर में पक्षी-गण अपने आप ही खिंचे चले जाते हैं।

तानसेन बाहर निकला, नागरिक जनता के एक दल को देखकर वह विस्मित हुआ, और फिर समझ कर बोला—हाँ, आपके सिर पर आज कदाचित् मृत्यु सवार हो रही है।

नवयुवक साधु मुस्कराया—जी हाँ मेरी आपके साथ गान-विद्या पर चर्चा करने की अभिलाषा है।

तानसेन ने बेपरवाही से उत्तर दिया—हाँ, अपनी इच्छा पूरी करो। इस समय सिपाहियों को अपनी हथकड़ियों का ध्यान आया। झनकारते हुए आगे बढ़े और उन्होंने नवयुवक साधु के हाथों में पहना दीं।

भक्ति का ताँता टूट गया, श्रद्धा के भाव पकड़े जाने के भय से उड़ गये और लोग इधर-उधर भागने लगे। सिपाही कोड़े बरसाने लगे और लोगों के तितर-बितर हो जाने के पश्चात् नवयुवक साधु को दरबार की ओर ले चले। दरबार की ओर से शर्तें सुनाई गईं कि कल प्रातःकाल नगर के बाहर वन में तुम दोनों का गान-युद्ध

होगा। यदि तुम हार गये तो तुम्हें मार डालने का तानसेन को पूर्ण अधिकार होगा और यदि तुमने उसे पराजित किया तो उसका जीवन तुम्हारे हाथ में होगा।

नवयुवक साधु ने शर्तें स्वीकार कीं और अदालत ने आज्ञा दी कि कल प्रातःकाल तक पुलिस की रक्षा में रहो।

पाठक समझ ही गये होंगे कि यह नवयुवक साधु बैजू बावरा ही था।

(५)

भगवान भास्कर की पहली किरण ने आगरे की जनता को नगर के बाहर भागते देखा। साधु की प्रार्थना पर सर्व साधारण को भी उसके जीवन और मृत्यु का कौतुक देखने की आज्ञा दी गई थी। साधु की विद्वत्ता की धाक दूर-दूर तक फैल चुकी थी। जो कभी अकबर की सवारी के देखने को भी घर से बाहर न निकले थे, जिन्होंने कभी बड़े-बड़े त्योहारों पर भी बाहर आना पसन्द न किया था, आज वे भी नई पगड़ियाँ घोट-घोट कर बाँध रहे थे।

ऐसा जान पड़ता था कि आज नगर से बाहर वन में नूतन नगर बस जाने को है—जहाँ कनातें लगी थीं, चाँदनियाँ तनी थीं और कुर्सियों की शृंखला सजी थी। जनता बढ़ रही थी और उद्विग्नता और अधीरता से गान-युद्ध के समय की प्रतीक्षा कर रही थी। बालक को प्रातःकाल मिठाई मिलने की आशा दिलाई जाय तो वह रात्रि को कई बार उठ-उठ कर देखता है कि अभी

सूर्य निकला है या नहीं। दस बज गये। लोगों ने दृष्टि ऊपर को उठाई, अकबर सिंहासन पर था, साथ ही नीचे तानसेन बैठा था और सामने फर्श पर नवयुवक बैजू बावरा दिखाई देता था।

अकबर ने घंटी बजाई और तानसेन ने कुछ प्रश्न संगीत-विद्या के सम्बन्ध में बैजू बावरे से किये। बैजू ने उचित उत्तर दिये। लोगों ने हर्ष से तालियाँ बजाईं। मुख से "जय हो, जय हो", "बलिहारी है" की ध्वनि निकलने लगी। मारने वाले मास्टर को यदि इन्सपेक्टर झाड़ दे तो बालक प्रसन्न हो जाते हैं।

बैजू बावरे ने सितार हाथ मे लिया और जब उसके पर्दों को हिलाया तो जनता ब्रह्मानन्द में डूब गई और वृक्षों के पत्ते तक निःशब्द हो गये। वायु रुक गई और सुनने वाले मन्त्र-मुग्धवत सुधि-हीन हुए, सिर हिलाने लगे। बैजू बावरे की अँगुलियाँ सितार पर दौड़ रही थीं। उन तारों पर राग की विद्वत्ता निछावर हो रही थी और लोगों के मन चकोर की नाईं उछल रहे थे। लोगों ने देखा और आश्चर्य चकित होकर रह गये कि हरिण छलाँगें मारते हुए आये और बैजू बावरे के पास खड़े हो गये। बैजू बावरा सितार बजाता रहा—बजाता रहा—बजाता रहा।

हरिण मस्त थे। बैजू बावरा ने सितार हाथ से रख दिया और अपने कंठ से फूल-मालाओं को उतार कर उन्हें पहना दिया; फूलों के स्पर्श से हरिणों को सुधि आई और वे चौकड़ी भरते हुए भाग कर वृक्षों में छिप गये। बैजू ने कहा—तानसेन! फूल-

मालाओं को अब यहाँ फिर मँगवाइए, तब मैं आपको संगीत-विद्या में पूर्ण मानूँ।

तानसेन सितार हाथ में लेकर अपनी पूर्ण प्रवीणता के साथ बजाने लगा। ऐसा अच्छा सितार उसने अपने जीवन में कभी न बजाया था। सितार के साथ वह स्वयं सितार बन गया और पसीना-पसीना हो गया। उसको अपने तन की सुधि न थी और सितार के सिवा संसार में उसके लिए और कुछ न था। आज उसने वह राग बजाया जो कभी न बजाया था। मृत्यु की दौड़ थी और सिरों की बाजी लग रही थी।

बहुत समय बीत गया। अँगुलियाँ दुखने लगीं। लोगों ने आज तानसेन को पसंद न किया, सूर्य और पटबीजने की तुलना ही क्या है।

बहुत चेष्टा करने पर भी जब कोई हरिण न आया तब तानसेन की आँखों के सामने मृत्यु नाचने लगी, देह पसीना पसीना हो गई और लज्जा मे मुख-मंडल तमतमा उठा। वह खिसियाना होकर बोला—वे हरिण तो अकस्मात् इधर आ निकले थे। राग का प्रभाव न था। साहस है तो अब दुबारा बुलवाओ।

बैजू बावरा मुस्कराया और धीरे से बोला—बहुत अच्छा! यह कह कर उसने फिर सितार पकड़ लिया। एक बार फिर संगीत-लहरी वायु-मंडल में लहराने लगी और फिर सुनने वाले संगीत-सागर की तरंगों में डूबने लगे। हरिण बैजू बावरे के पास फिर आये। वही हरिण जिनकी ग्रीवाओं में फूल-मालाएं पड़ी

हुई थीं और जो राग की सुरीली ध्वनि के आकर्षण से बुलाये गये थे। बैजू बावरे ने मालाएँ उतार लीं और हरिण कूदते हुए लोप हो गये।

अकबर का तानसेन के साथ अगाध प्रेम था। जब उसकी मृत्यु निकट देखी तो कंठ भर आया, परन्तु प्रतिज्ञा हो चुकी थी। वह विवश होकर उठा और संक्षेप से निर्णय सुनाया गया—"बैजू बावरे की विजय और तानसेन की पराजय।"

तानसेन काँपता हुआ आगे बढ़ा। वह जिसने अपनी ओर से किसी को मृत्यु के घाट उतारते हुए दया न की थी, उस समय दया के लिए प्रार्थना करने लगा।

बैजू बावरे ने कहा—मुझे प्राण लेने की इच्छा नहीं है। तुम इस निष्ठुर नियम को तुड़वा दो कि जो कोई आगरे की सीमाओं के अन्दर गाये; यदि तानसेन से घट कर हो तो मरवा दिया जाय।

अकबर ने अधीर होकर कहा—यह नियम अभी इसी क्षण से उठता है।

तानसेन बैजू बावरे के चरणों पर गिर पड़ा और दीनता से कहने लगा—यह उपकार जीवन भर न भूलूँगा।

बैजू बावरे ने उत्तर दिया—बारह वर्ष पहले की बात है, तुमने मेरे पिता के प्राण लिए थे। यह उसी का बदला है।

प्रश्न

१—इस कहानी का शीर्षक 'आदर्श बदला' क्यों रक्खा गया है?

२—तानसेन के विषय में तुम क्या जानते हो?

३—बैजू ने तानसेन से अपने बाबा का किस प्रकार बदला लिया? लेखक ने इस बदले को आदर्श बदला क्यों कहा है?

४—शंकरानन्द ने बैजू से क्या प्रतिज्ञा करवाई? बैजू ने उस प्रतिज्ञा का किस प्रकार पालन किया?

५—बैजू ने तानसेन को किस प्रकार पराजित किया और पराजित तानसेन के साथ उसने कैसा बर्ताव किया?

६—इस कहानी से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है?

अभ्यास

१—स्पष्ट रूप से अर्थ बताओ—

(अ) प्रभात का समय .... वर्षा हो रही थी (दे० प्रथम अनुच्छेद)।

(आ) मन बड़ा चञ्चल है..... ..... काट खाता है (दे० द्वितीय अनुच्छेद)।

(इ) बैजू ने..................नेत्र झुका लिए। (दे० पृष्ठ ८४ प्रथम अनुच्छेद)।

(ई) बाबा तू ....रक्षा करेगा। (दे० पृष्ठ ८२ द्वितीय अनुच्छेद)।

२—अर्थ बताओ और अपने वाक्यों में इनका प्रयोग करो—

परित्याग, कण्टकावृत्त, कृतज्ञता, श्रृंखला, प्रतिहिंसा।

३—इस पाठ के प्रथम अनुच्छेद में प्रभात का वर्णन किया गया है। उसकी सहायता से अपने शब्दों में 'प्रभात-वर्णन' पर एक छोटा-सा निबन्ध लिखो।



४—वाक्य-विश्लेषण करो—

" वे ही हरिण जिनकी ग्रीवाओं में फूल-मालाएँ पड़ी हुई थीं और जो राग की सुरीली ध्वनि के आकर्षण से बुलाए गए थे, बैजू बावरे के पास फिर आगए। "

—:o:—

१४—चीनियों की सामाजिक रीतियाँ

[श्री मदनलाल जैन एम० ए० इस पाठ के लेखक हैं। चीन भारतवर्ष का पड़ोसी तथा उसका प्राचीन मित्र है। उसकी सभ्यता बहुत पुरानी है। अतएव चीनियों की सामाजिक रीतियों की जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है। इस पाठ में चीन की सामाजिक रीतियों का अध्ययन करो।]

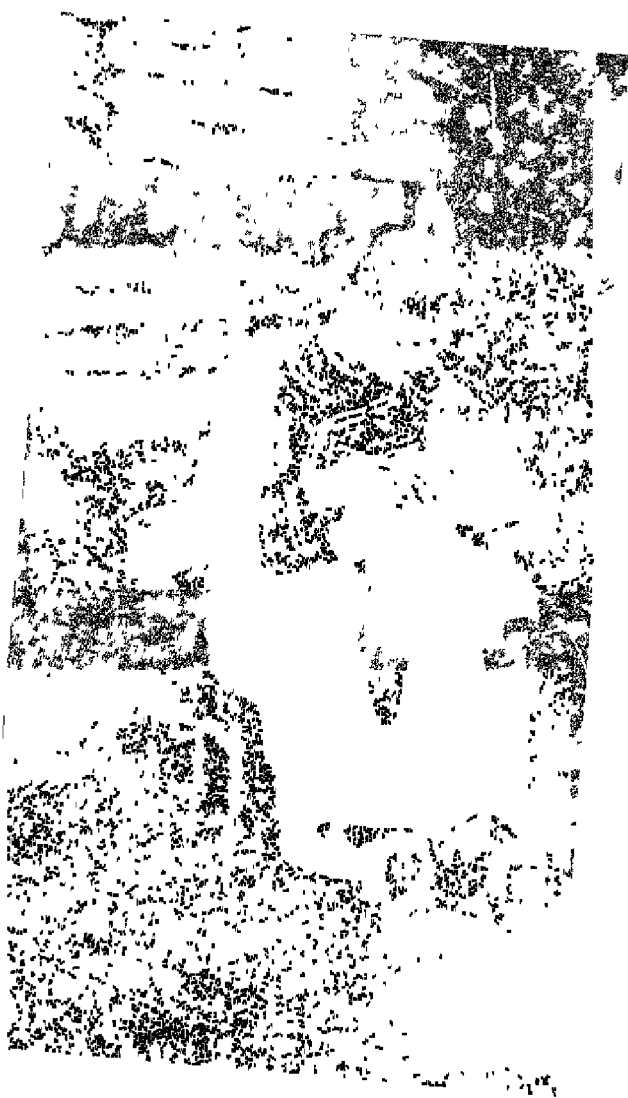
तुमने चीन देश के बारे में अवश्य सुना होगा। यह देश भारत साम्राज्य के उत्तर-पूर्व में है और संसार के अत्यन्त घने बसे हुए देशों में से है। यहाँ प्रति वर्ग मील संयुक्त प्रान्त से भी अधिक मनुष्य रहते हैं। इस देश के निवासी चीनी कहलाते हैं। बहुत से चीनी हमारे देश में रेशमी वस्त्र भी बेंचा करते हैं। चीनी मिट्टी के बर्तन भारतवर्ष के सभी नगरों के बाज़ारों में बिकते हैं।

चीनी लोग देखने में हम लोगों से मिलते-जुलते हैं, परन्तु वे ब्रह्मा वालों के अधिक समान प्रतीत होते हैं। इनका रंग कुछ-कुछ

पीला-सा होता है। इनका शरीर सुडौल, कद छोटा, चेहरा चौड़ा, कनपटी की हड्डियाँ ऊँची, आँखें पतली और काली, नाक चपटी और बाल काले तथा चमकीले होते हैं। इनके दाढ़ी मूँछें बहुत कम होती हैं। चीनी स्वभाव के कोमल, बोल चाल में नम्र, व्यवहार में बड़े ईमानदार और काम करने में अत्यन्त चतुर और दक्ष होते हैं।

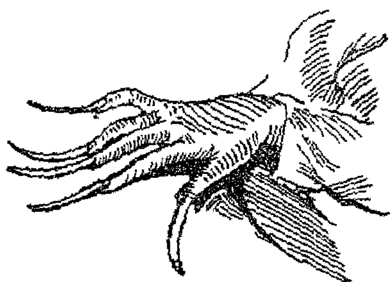
चीनी जाति संसार की अत्यन्त प्राचीन जातियों में से है। हिन्दुओं की सभ्यता की तरह चीनियों की सभ्यता भी बहुत प्राचीन है। ईसा से कई शताब्दि पूर्व ही चीनियों ने छापा, कागज, बारूद और कुतुबनुमा जैसी संसार में क्रान्ति पैदा करने वाली वस्तुओं का आविष्कार कर लिया था। चीनियों के बराबर परिश्रमी जाति संसार में कदाचित् ही कोई हो। इन्होंने मंगोलों के आक्रमण से बचने के लिए १,५०० मील लम्बी एक विशाल दीवाल बनाई थी, जिसकी गणना आज तक संसार की अत्यन्त आश्चर्य-जनक वस्तुओं में की जाती है। यह दीवाल २० फुट ऊँची है और इतनी चौड़ी है कि इस पर चार घोड़े बराबर भली-भाँति दौड़ सकते हैं।

चीनियों के कुछ रीति-रिवाज बड़े ही विचित्र हैं। मनुष्य सिर के बाल मुड़वा लेते हैं और केवल बालों का एक गुच्छा बढ़ने देते हैं। इन बालों को गूँथ कर एक पूँछ-सी तैयार कर ली जाती है जिसे अंग्रेजी में 'पिग टेल' कहते हैं। स्त्रियों के पैर बहुधा तंग जूतों में जकड़ दिए जाते हैं जिससे वे बढ़ने नहीं पाते।



चीनी स्त्री अपने बच्चे को खाना खिला रही है

किसी स्त्री का पैर तो केवल ५ इंच ही लम्बा होता है। छोटे पैरों का होना स्त्रियों में सुन्दरता का चिह्न माना जाता है। अनेक मनुष्य अपने नख नहीं कटवाते। किसी-किसी मनुष्य के नाखून तो बढ़ते-बढ़ते ४ इंच लम्बे हो जाते हैं। बढ़िया नाखूनों की रक्षा बड़े यत्न से की जाती है।



नाखून

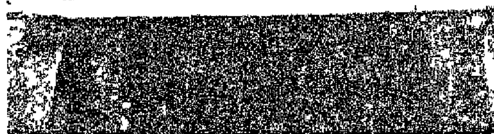
चीनी लोग अपने माता-पिता का बड़ा आदर तथा सम्मान करते हैं। विद्वानों का भी बड़ा सत्कार किया जाता है। अपने बाप-दादाओं को ये लोग बड़ी श्रद्धा के साथ याद रखते हैं। कभी-कभी धनी लोग मनुष्य की आवश्यकता की प्रायः सभी वस्तुएँ छोटे-छोटे रूपों में बनाकर अग्नि देवता को समर्पण कर देते हैं। इससे यह आशा की जाती है कि वे वस्तुएँ उनके पूर्वजों की मृत आत्माओं के काम आवेंगी और इस प्रकार वे स्वयं पुण्य के भागी होंगे। प्रत्येक चीनी अपने घर पर कफन तैयार रखता है, जिससे उसे याद आती रहे कि एक-न-एक दिन उसे अवश्य मरना है और इसलिए उसे संसार के पापों से बचते रहना चाहिये। चीनी अपने घर ईंट-चूने या लकड़ी के बनाते हैं और दीवार पर पशु, पक्षी, फूल आदि के बड़े सुन्दर रंग-बिरंगे चित्र स्वयं हाथ से खींच कर बनाते हैं।

चीन में अपराधियों को बड़ा कड़ा दण्ड दिया जाता है। यदि कोई किसी की दीवाल में सेंध लगाते पकड़ा जाय तो उसे वहीं बाँध कर पड़ा रहने देते हैं, जिससे राहगीरों की निगाहें उसके ऊपर पड़ती रहें। अपने माता-पिता का अनादर करने के लिए भी कड़ा दण्ड दिया जाता है। मृत्यु-दण्ड अनेक अपराधों के लिए नियत है।

कहीं-कहीं डाक्टरों को इस बात की मासिक फीस दी जाती है कि कुटुम्ब का प्रत्येक व्यक्ति नीरोग रहे। यदि कोई मनुष्य बीमार पड़ गया, तो जितने दिनों के लिए वह अस्वस्थ रहेगा, उतने दिनों तक की फीस डाक्टर को नहीं दी जायगी।

चीनी भाषा भी बड़ी विचित्र होती है। इसमें वर्णमाला नहीं होती अर्थात् अक्षर नहीं होते, केवल शब्द-ही-शब्द होते हैं। प्रत्येक वस्तु के लिए संकेत नियत है। भाषा सीखने के लिए इन्हीं संकेतों को याद रखना पड़ता है। एक और विचित्र बात चीनी भाषा में यह है कि वह हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी आदि की तरह दायें-बायें से नहीं लिखी जाती, वरन् ऊपर से नीचे की ओर लिखी जाती है। तुम्हें यह बात जानकर आश्चर्य अवश्य हुआ होगा, परन्तु भाषा-विज्ञान विशारदों का मत है कि यह नी लिखावट ढग अधिक वैज्ञानिक हैं।

तक चीनी अपने देश में विदेशियों को नहीं घुसने
अब कुछ भागों में विदेशी आने-जाने लगे हैं।
तो बहुत उपजाऊ है ही, उसके भीतर खनिज
पड़े हैं। कदाचित् संसार में कोयले की सबसे
परन्तु उनसे काम नहीं लिया जाता। न वे
म करते हैं और न विदेशियों को ही काम

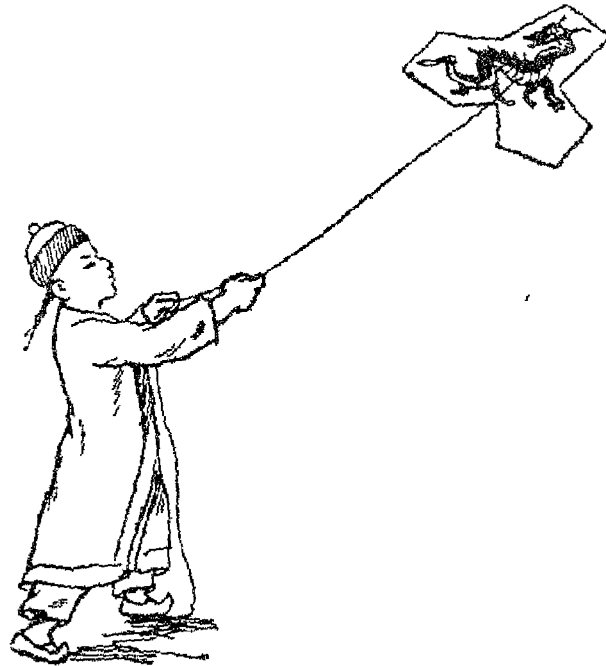


नी परिवार बाँस की खपच्चियों से भात खा रहा है

कों के बीच में छेद होता है और लोग माला-सी

बनाकर उन्हें इधर-उधर लिये फिरा करते हैं। परन्तु सिक्के होते कम मूल्य के हैं। इस प्रकार थोड़े मूल्य के लिए उन्हें अपने साथ बहुत-सा बोझ लाद कर चलना पड़ता है।

चीनियों का मुख्य भोजन चावल है। इसको वे बड़ी रुचि से खाते हैं। भात लकड़ी की ८ इंच लम्बी दो खपच्चियों द्वारा खाया जाता है। खपच्चियों से ये लोग ऐसी फुर्ती और सफाई के



पतंग

साथ भात खाते हैं कि देखने वाले आश्चर्य-चकित रह जाते हैं।

थाली से मुँह तक एक ताँता-सा बँध जाता है। चीनियों को मांस से परहेज नहीं होता। साधारण पशुओं के मांस के अतिरिक्त बिल्ली-चूहे आदि का भी मांस खाया जाता है। चीनियों में अफीम खाने की आदत बहुत होती है; परन्तु धीरे-धीरे अब वे इस कुटेव को छोड़ते जाते हैं।

बच्चे से बूढ़े तक प्रत्येक चीनी खेलों का बड़ा शौकीन होता है। पतंग उड़ाने में उनकी विशेष रुचि होती है। उनकी पतंग भी अनेक रंगों और अनेक रूपों की होती हैं।

चीन की गणना संसार के पिछड़े हुए देशों में की जाती है। सन् १९१२ से यहाँ पर प्रजातन्त्र राज्य स्थापित हो गया है। परन्तु देश की भीतरी दशा अब भी डावाँ-डोल है। किन्तु चीनियों ने अब होश सँभाल लिया है। आशा की जाती है कि चीनी लोग फिर उसी वैभव को प्राप्त कर लेंगे जिसके लिए वे किसी समय सारे संसार में प्रसिद्ध थे।

प्रश्न

१—चीन की दीवार के विषय में तुम क्या जानते हो? इसको चीनियों ने क्यों बनाया था?

२—चीन की भाषा के विषय में तुम क्या जानते हो? उसमें और हमारी भाषा में क्या विशेष अन्तर है?

३—आज-कल चीन की गणना संसार के कैसे देशों में की जाती है?

४—चीनियों का मुख्य भोजन क्या है? उसे वे किस प्रकार खाते हैं?

अभ्यास

१—अर्थ बताओ और अपने वाक्यों में इनका प्रयोग करो—दक्ष, कदाचित्, आश्चर्यजनक।

२—वाक्य विश्लेषण करो—

चीनी लोग अपने माता-पिता तथा बड़ों का बहुत आदर-सत्कार करते है।

३—निम्नांकित विषयों पर प्रकाश डालो—

(१) चीनियों का भोजन।

(२) चीनियों के सिक्के।

४—चीनियों की सामाजिक रीतियों पर एक छोटा सा निबन्ध लिखो।

५—चीनियों के रंग-रूप और उनकी बनावट का वर्णन करो।

आदेश

(अ)	(ब)
१—इनके दाढ़ी-मूँछें बहुत कम होती हैं।	इनके दाढ़ी और मूँछें बहुत कम होती हैं।
२—मृत्यु-दण्ड अनेक अपराधों के लिए नियत है।	मृत्यु का दण्ड अनेक अपराधों के लिए नियत है।
३—भाषा-विज्ञान-विशारदों का मत है।	भाषा के विज्ञान के विशारदों का मत है।



(अ) समूह के वाक्यों के वही अर्थ हैं जो (ब) समूह के वाक्यों के, परन्तु उनके शब्दों में कुछ न्यूनाधिक्य है। (अ) पहले समूह के वाक्यों में क्रम से 'और' संयोजक तथा 'का' 'के' विभक्तियों का लोप हो गया है। (ब) समूह में ये प्रकट कर दी गई हैं। पहले समूह के वाक्य छोटे हैं। दूसरे के अपेक्षाकृत बड़े।

नोट कर लो—जब दो या दो से अधिक पद अपनी-अपनी विभक्तियों को छोड़ कर मिलते हैं और एक सार्थक पद बनाते हैं, तब उस पद को समिश्र पद या सामासिक पद कहते हैं।

समास का अर्थ है छोटा करना।

जब सामासिक पदों को उनके सम्बन्धी शब्दों या विभक्तियों सहित स्पष्ट करके दिखाया जाता है तब उसे विग्रह कहते हैं।

समस्त पद	विग्रह	कौन समास है

उपर्युक्त नक्शा बना कर उसमें कुछ समस्त पदों का विग्रह दिखाओ।

—:०:—

१५—बादल की मृत्यु

[यह एकाङ्की नाटक है। इस एकाङ्की के पात्र प्राकृतिक पदार्थ हैं। लेखक ने इन्हें सजीव मानकर इनके द्वारा जीवन सम्बन्धी कुछ तत्वों के विषय में विचार व्यक्त किये हैं। ये विचार मानव-पात्रों के द्वारा भी व्यक्त किये जा सकते थे, परन्तु लेखक ने प्राकृतिक पदार्थों को अपनी कल्पना से जीवित प्राणी-सा मानकर साधन बनाया है। लेखक की कल्पना

ने निर्जीव को सजीव बना दिया है। इसके लेखक श्री रामकुमार वर्मा आज-कल के प्रसिद्ध और प्रमुख कवि तथा एकाङ्की नाटककार हैं। उन्होंने अनेक एकाङ्की नाटकों की रचना की है। 'रेशमी टाई' में इनके एकाङ्की नाटक पढ़ो।]

स्थान—पश्चिम आकाश

समय—रात्रि होने में कुछ विलम्ब है। क्षितिज अरुण वर्ण है। सूर्य की अस्त होती हुई किरणें गिरि-शृङ्गों को चूम रही हैं, जैसे मृत्यु-शैया पर लेटी हुई माँ अपने वयस्क पुत्र को चूम रही है। सन्ध्या के साथ एक बड़ा बादल।

बादल—[आगे बढ़कर] क्या जा रही हो सन्ध्या? देखो न, हमारे सहयोग से तुम्हारा शरीर कितना सुन्दर है। किसी महारानी के रङ्ग-बिरङ्गे शरीर के समान फैली हुई हो! पुष्पों के रङ्ग और उनके सौकुमार्य से सजी हुई तुम्हारे उर की यह छवि! न सन्ध्या, न जाओ।

सन्ध्या—[मलिन होकर] बादल, यह अपनी प्रशंसा रहने दो। यदि मैं रुक जाऊँ, तो क्या हो? अस्थिरता ही तो जीवन का सौंदर्य है। एक क्षण में मेरे सौन्दर्य की हिलोर और दूसरे क्षण में उसका विनाश! यही संसार का स्वरूप है। दूसरों को भी तो जीवन का अवसर दो। यह रङ्गमञ्च किसी एक पात्र के अधिक देर तक ठहरने के लिए नहीं है। यदि मेरी छवि में ही विश्व के नेत्रों की आकाङ्क्षा......वह देखो, दो तारे! अहा कैसे चमक रहे हैं!

बादल—चमकने दो। दो शैतान बच्चों की तरह वे समय के पहले ही अपने घर से बाहर आकर खेल रहे हैं। अभी शेष तारों के निकलने में कितनी देर है? देखो अभी सूर्य की किरणें उस शृङ्ग पर चमक रही हैं। कितनी उज्ज्वल हैं!

सन्ध्या—और वृक्षों के नीचे की वह घनी छाया?

बादल—छाया? वह तो किसी पापी के हृदय के समान सदैव नीचे की ओर रहा करती है। दिन में भी तो छाया का अस्तित्व है। सन्ध्या, न जाओ। देखो, तुम आकाश के छोटे कोने ही में तो हो रात्रि के लिए सारा आकाश पड़ा हुआ है।

सन्ध्या—आकाश के केवल एक कोने में रहने पर भी परमात्मा की सत्ता के समान मैं सारे आकाश में व्याप्त हूँ। भोले बादल, स्वतन्त्रता की उपासिका दो रानियाँ एक साथ रहना नहीं जानतीं। यह बात समझ सके हो या नहीं?

बादल—महारानी सन्ध्या! रुको, कुछ देर सरिता में अपना मुख देखो, लहरों की छलकती हुई रूप-राशि में यौवन के समान बरस पड़ो। पृथ्वी के अङ्ग में सुनहले अङ्गराग के समान लगी रहो। परमात्मा की सत्ता के समान कुछ देर क्षितिज-रेखा में सुनहले फूल गूँथो। क्यों रानी, परमात्मा की सत्ता किसे कहते हैं?

सन्ध्या—[हँसकर] तुम मुझे बातों में नहीं भुला सकते। बादल, देखो, वायु की वह लहर आयी!

[वायु का प्रवेश। बादल अलग हट जाता है।]

वायु—[सन्ध्या को देखकर] अरे, अभी तक तुम यहीं हो ?

सन्ध्या—[उदास होकर] कुछ नहीं, बादल को अपने प्रस्थान-समय का अन्तिम सन्देश दे रही थी।

वायु—[शीघ्रता से] सन्देश ? अब उसे उन दो तारों का सन्देश सुनने दो। वे आकाश में महारानी रात्रि के आने का सन्देश सुना चुके हैं—अभी दो क्षण पहले।

बादल—[समीप आकर टेढ़ा होकर] सुनाने दो। [वायु का तेजी से प्रस्थान] महारानी सन्ध्या यहीं रहेंगी। [अपने शरीर की ओर देखकर] मत जाओ महारानी, मत जाओ।

[क्षितिज पर पतन]

सन्ध्या—[व्याकुल होकर] जाऊँगी, बादल ! यह मोह घातक है। मैं भी तो निर्बल होती जा रही हूँ। अब भी तुम्हें रूप की प्यास है ?

[प्रस्थान]

[वायु का पुनः प्रवेश और बादल पर प्रहार]

बादल—[फैल कर कराहते हुए] आह, सन्ध्या ! सन्ध्या... अब मेरा शरीर !!

[धीरे-धीरे बादल काला पड़ जाता है।]

प्रश्न

१—बादल क्यों सन्ध्या को रोकना चाहता है? वह क्यों नहीं रुक सकती?

२—सन्ध्या ने बादल से अपने न रुकने के क्या-क्या कारण बताये थे?

३—सन्ध्या ने संसार का क्या स्वरूप बताया है? तुम्हारी समझ से वह उपयुक्त है कि नहीं?

अभ्यास

१—सन्ध्या का दृश्य वर्णन करो।

२—आशय समझाओ—

आकाश के केवल एक कोने में········ यह बात समझ सके हो या नहीं?

आदेश

सन्ध्या के लिए मलिन और सन्ध्या के वियोग में बादल का शरीर काला पड़ने का प्रयोग लेखक ने साभिप्राय किया है। इस प्रकार के अन्य प्रयोगों पर भी विचार करो।

—:※:—

१६—बिहारी के दोहे

[कविवर बिहारी लाल माथुर चौबे थे। ग्वालियर के समीप गोविन्द-पुर ग्राम में सं० १६६० में इनका जन्म हुआ था। सं० १७२० मे परलोक वासी हुए।

'बिहारी सतसई' इनका अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

इस कथन पर ध्यान रख कर इनके दोहे पढ़ो—

"सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं, बेधै सकल सरीर।"]

कैसे छोटे नरन तें, सरत बड़नि के काम।
मढ़ो दमामा जात क्यों, कहुँ चूहे के चाम ॥ १ ॥
ओछे बड़े न ह्वै सकैं, लगि सतरौहैं बैन।
दीरघ होहिं न नैकहू, फारि निहारे नैन ॥ २ ॥
अति अगाध अति औथरो, नदी, कूप, सर, बाय।
सो ताको सागर जहाँ, जाको प्यास बुझाय ॥ ३ ॥
घर-घर डोलत दीन ह्वै, जन-जन जाँचत जाय।
दिये लोभ-चसमा चखनि, लघु पुनि बड़ो लखाय ॥ ४ ॥
बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमान।
भलो-भलो कहि छोड़िए, खोटे ग्रह जपदान ॥ ५ ॥
संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति के धन्ध।
राखो मेलि कपूर में, हींग न होइ सुगन्ध ॥ ६ ॥

को कहि सके बड़ेन सों, लखे बड़ी पैं भूल।
दीने दई गुलाब को, इन डारन वे फूल ॥ ७ ॥

यही आस अटक्यौ रहै, अलि गुलाब के मूल।
ह्वै हैं फेरि वसंत ऋतु, इन डारन वे फूल ॥ ८ ॥

कोटि जतन कोऊ करो, परे न प्रकृतिहि बीच।
नल बल जल ऊँचे चढ़ै, तऊ नीच को नीच ॥ ९ ॥

दुसह दुराज प्रजानि को, क्यों न बढ़े अति दुन्द।
अधिक अँधेरो जग करैं, मिलि मावस रवि चन्द ॥१०॥

बड़े न हूजे गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनों गढ़ो न जाय ॥११॥

सबै हँसत कर तारि दै, नागरता के नाँव।
गयो गरब गुन को सबै, बसे गँवारे गाँव ॥१२॥

नर की अरु नलनीर की, गति एकै करि जोइ।
जे तो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊँचो होइ ॥१३॥

बढ़त-बढ़त सम्पति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाय।
घटत-घटत पुनि ना घटै, बरु समूल कुम्हिलाय ॥१४॥

मीत न नीत गलीत है, जो धन धरिये जोरि।
खाये खरचे जो बचै, तो जोरिये करोरि ॥१५॥

प्रश्न

-- 'नर' की और 'नल-नीर' की एक ही सी 'गति' किस प्रकार होती है ?

२ लोभ का चश्मा लगाने से छोटी वस्तु भी बड़ी कैसे दिखाई देती है ?

३—मन सरोज में कौन-सा अलंकार है ?

४—दो राजाओं की प्रजा में किस प्रकार द्वन्द मचा रहता है ?

५—मूर्खों के देश में रहने से गुणियों के गौरव किस प्रकार नष्ट हो जाते हैं ?

अभ्यास

१ —नीचे लिखे शब्दों के शुद्ध रूप लिखो—

दीरघ, चख, गरब, गुन, मीत ।

२—दोहा नं० २, ४, ८, १०, ११, १३, और १४ का भावार्थ लिखो।

३ —पर्यायवाची शब्द लिखो—

नदी, फूल, कनक, सलिल ।

४—'कुमति' शब्द कैसे बना है ? इसी तरह पाँच शब्द और बनाओ ।

५—दोहा नं० ३, ११ और १५ से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

६ —रूपक और उपमा अलंकार का अन्तर बताओ ।



१७—पंचायती सभाएँ

[इस पाठ के लेखक हैं पं० गुरुसेवक उपाध्याय। इस पाठ में आपने यह दर्शाया है कि हमारे गाँवों में अविद्या तथा फूट होने से क्या क्या हानियाँ हो रही हैं और पंचायती सभाओं द्वारा वे हानियाँ किस प्रकार दूर की जा सकती हैं।]

हमारा देश किसी समय देवताओं की लीला-भूमि समझा जाता था, पर अब वह शैतान का क्रीड़ा-स्थान माना जाता है। अविद्या, दरिद्रता और फूट के फैलने से शैतान ने सहज ही में अपना अड्डा यहाँ जमा लिया है। दरिद्रता तो पाँव तोड़कर बैठी है और फूट ने बेतरह जड़ पकड़ ली है। वह साल में एक बार सूप फटफटाने से नहीं निकाली जा सकती, और न इसकी जड़ लेक्चरों की तेजी से कट सकती है। अविद्या का गहरा अन्धकार कोने-कोने में जा घुसा है। वह केवल उस प्रकाश से—जो थोड़े-से सरकारी स्कूल फैला रहे हैं, नहीं हट सकता। जिन कुछ उपायों से ये तीनों यहाँ से धीरे-धीरे निकाले जा सकते हैं, वे यहाँ थोड़े में बतलाये जायँगे।

आजकल हम देखते हैं कि जमींदार और काश्तकार की अक्सर नहीं बनती है। उनमें प्रेम नहीं रह गया, मदद देकर एक दूसरे को लाभ पहुँचाना वे भूल गये हैं। जमींदार एक ओर खींचता है, तो काश्तकार दूसरी ओर। उसको लगान ही बढ़ाने की सूझती है, और इसको जमीन की मिट्टी तक खुरच कर खा

जाने की। फिर भी दोनों तबाह हो रहते हैं। उन दो मुक्खड़ों का-सा हाल हो रहा है, जो अकाल में एक दूसरे को खा जाना चाहते हैं, और मेल के साथ वह उपाय नहीं करते, जिससे दोनों की भूख दूर हो और आपस में प्रेम भी बढ़े। इसमें दोष दोनों ही का है। हाँ, एक का अधिक हो सकता है और दूसरे का कम। जिन देशों में मेल और प्रेम से काम हो रहा है, वहाँ दोनों फूल-फल रहे हैं।

गवर्नमेंट देहातियों की सहायता करना चाहती है। तरह-तरह के उपाय उसने निकाले, पर जैसा चाहिए वैसा ठीक एक भी न उतरा। गवर्नमेंट को राय देने वाले प्रायः वे होते हैं, जिनको ग़रीब देहातियों के साथ सहानुभूति नहीं, या वे जिनको देहात का अनुभव नहीं। इसलिए उसको ठीक राय नहीं मिलती है। पुराने ज़माने में पंचायतों द्वारा गाँव वाले अपनी राय हाकिम के यहाँ पहुँचाते थे और फ़ायदा उठाते थे। अब बड़ी-बड़ी पंचायती सभाएँ नहीं रह गईं। आपस में संगठन है नहीं, इसलिये गवर्नमेंट की सहायता से देहाती लाभ नहीं उठा सकते हैं। अन्त में सरकार ने पुरानी ही बात अच्छी समझी और गाँव गाँव में पंचायती सभा बनाने के लिये क़ानून बना दिया। उसको सहकारी सभा, सहयोगी सभा, और कोआपरेटिव सोसायटी भी कहते हैं। मैं ऐसी सभाओं को पंचायती सभा कहना पसन्द करता हूँ। उनसे अवश्य उद्धार हो सकता है। उन्हें वे पंचायतें न समझनी चाहिएँ, जो कहीं-कहीं मुक़दमा करने के

लिए ५-७ पंचों की सभाएँ सरकार के द्वारा मुकर्रर हुई हैं। उनका उनसे कुछ सम्बन्ध नहीं है, जैसा कि आगे मालूम हो जायगा। गाँव भर एक राय होकर बहुत कुछ कर सकता है, और इसे कोई आँख नहीं दिखा सकता; पर अकेले-अकेले अपने-अपने मन का काम करने से काम भी नहीं सधता है और फूट भी पैदा हो जाती है, जिससे सब गाँव नष्ट हो जाता है। संगठन के मन्त्र को यूरोप, अमेरिका वालों ने तथा एशिया में जापान वालों ने खूब समझा; उसे वे काम में भी लाए। अब हिन्दुस्तान का नम्बर आना चाहिए और उससे इसे फायदा उठाना चाहिए।

महाजन कड़ा ब्याज क्यों लेता है ? क्योंकि ग़रीब किसान के या जो ग़रीब हो; उसके पास रेहन-बन्धक रखने को माल नहीं होता और न उसकी कोई जमानत ही करता है, जिससे उसका कुछ 'साख' नहीं होती है। इसी वजह से महाजन का रुपया भी कभी-कभी डूब जाता है। कभी-कभी उसे अदालत में दावा करना पड़ता है। व्यर्थ रुपये ख़र्च करने पड़ते हैं और कष्ट भी उठाना पड़ता है। क़र्ज लेने वाले और देने वाले में मनमोटाव भी अक्सर देखा जाता है, परन्तु कोआपरेटिव सोसायटी के द्वारा इन दोनों का फ़ायदा हो सकता है।

अतएव गाँव के वे लोग जिनको क़र्ज लेने की आवश्यकता रहती है और जो ईमानदार हैं, मिलकर एक पंचायती सभा बना लें और उसकी रजिस्ट्री रजिस्ट्रार साहब लखनऊ के यहाँ करा दें। सरकार की तरफ से ऐसी सभा के लिए सब ख़र्च—

टिकट वगैरह का—माफ़ है। ज़िले-ज़िले में कोआपरेटिव सोसाइटियों का एक ज़िला बैंक होता है, और एक इन्स्पेक्टर भी, जिसके पास लिखने से सब प्रबन्ध हो सकता है। रजिस्ट्री कराने पर सभा वाले अपने-अपने मन का प्रबन्ध नहीं करने पावेंगे और सभा टूटेगी भी नहीं। सभा वाले आपस में एक दूसरे की ज़िम्मेदारी और ज़मानत करेंगे, जिससे उनका पल्ला भारी हो जायगा, उनकी साख अच्छी समझी जायगी। तब कम ब्याज़ पर उनको ऋण मिल सकेगा और रुपया भी फ़िज़ूल खर्च न होने पावेगा। क्योंकि सभा के सदस्य एक दूसरे को फ़िज़ूल खर्च करने से रोकेंगे जिससे धीरे-धीरे सबकी दशा सुधर सकेगी। महाजन लोग भी इसी तरह की सभा यानी बैंक बना लें और रजिस्ट्री करा दें। वे खुद उसको चलावें। फिर जो कुछ उनके बैंक से क़र्ज़ दिया जायगा, डूबेगा नहीं; क्योंकि सरकार वसूल कराने में मदद देगी। बिना कचहरी दौड़े और खर्च किए यह इन्तज़ाम हो जायगा। सरकार की तरफ़ से हिसाब-किताब की जाँच भी सालाना होगी, जिससे बेईमानी का मौक़ा न मिलेगा। जब महाजनों का कुछ डूबा नहीं, कचहरी के खर्च और दौड़-धूप से बचे, तब वे कम ब्याज पर खुशी से क़र्ज़ देंगे और कर्ज़ लेने वाले और देने वाले में, जो मनमोटाव हो जाता है, वह भी होने न पायेगा, क्योंकि क़र्ज़ा महाजनों के बैंक से पंचायती सभा को मिलेगा और सभा से उसके मेम्बरों को। यह कोई नहीं कह सकेगा, कि किसका किसने क़र्ज़ा लिया है, फिर किसको कौन गाली

देगा, कौन किसको अपना ऋणी समझ कर दबावेगा। हड्हा और मुग़ल गाँव के ग़रीब भाइयों को लूटते हैं और बेइज्जत करते हैं। उनसे उनकी रक्षा करना धनी भाइयों का धर्म है।

इस समय जापान की एक सच्ची घटना लिखने योग्य है, उसको मन में बैठाना चाहिये। एक ज़मींदार ने देखा, कि उसके गाँव में बहुत-से काश्तकार महाजनों के ऋणी हो गये हैं और उनका ऋण से छुटकारा पाना कठिन है। वह रुपये वाला था; और खुद कम ब्याज पर क़र्ज़ देकर उनका गला छुड़ा सकता था। पर उसने सोचा कि इस तरह क़र्ज़ देने से किसानों पर जो उसका अहसान और दबाव पड़ेगा, उससे उनमें अपने पाँव के बल खड़े होने और अपनी स्वतन्त्रता बनाये रहने में कसर पड़ेगी, जिससे उनकी अपने देश और समाज की सेवा की योग्यता में कमी होगी। इसलिए उसने एक पंचायती-बैंक द्वारा अपने रुपये किसानों को कम ब्याज पर दिलवाये। कुछ बरसों में किसान न केवल ऋण से मुक्त हो गये, बल्कि आपस में मिल कर काम करने की, और एक दूसरे की मदद से अपने समाज की उन्नति की शिक्षा भी पा गये।

मुसलमान महाजन भी, जो सूद नहीं खाना चाहते हैं, इस बैंक में सम्मिलित हो सकेंगे, क्योंकि ऐसे बैंक से सूद नहीं मिलता, मुनाफ़ा बँटता है। उसी तरह जैसे किसी काम में अपना रुपया लगा कर वे मुनाफ़ा पाते हैं। ऐसी हालत में उनको भी कोई आपत्ति न होगी।

सा० सु० दू०—८

टिकट वग़ैरह का—माफ़ है। जिले-जिले में कोआपरेटिव सोसाइटियों का एक जिला-बैंक होता है, और एक इन्स्पेक्टर भी, जिसके पास लिखने से सब प्रबन्ध हो सकता है। रजिस्ट्री कराने पर सभा वाले अपने-अपने मन का प्रबन्ध नहीं करने पावेंगे और सभा टूटेगी भी नहीं। सभा वाले आपस में एक दूसरे की जिम्मेदारी और ज़मानत करेंगे, जिससे उनका पल्ला भारी हो जायगा, उनकी साख अच्छी समझी जायगी। तब कम ब्याज पर उनको ऋण मिल सकेगा और रुपया भी फ़िजूल खर्च न होने पावेगा। क्योंकि सभा के सदस्य एक दूसरे को फ़िजूल खर्च करने से रोकेंगे जिससे धीरे-धीरे सबकी दशा सुधर सकेगी। महाजन लोग भी इसी तरह की सभा यानी बैंक बना लें और रजिस्ट्री करा दें। वे खुद उसको चलावें। फिर जो कुछ उनके बैंक से क़र्ज़ दिया जायगा, डूबेगा नहीं; क्योंकि सरकार वसूल कराने में मदद देगी। बिना कचहरी दौड़े और खर्च किए यह इन्तज़ाम हो जायगा। सरकार की तरफ़ से हिसाब किताब की जाँच भी सालाना होगी, जिससे बेईमानी का मौक़ा न मिलेगा। जब महाजनों का कुछ डूबा नहीं, कचहरी के खर्च और दौड़-धूप से बचे, तब वे कम ब्याज पर खुशी से क़र्ज़ देंगे और कर्ज़ लेने वाले और देने वाले में, जो मनमोटाव हो जाता है, वह भी होने न पायेगा, क्योंकि क़र्ज़ा महाजनों के बैंक से पंचायती सभा को मिलेगा और सभा से उसके मेम्बरों को। यह कोई नहीं कह सकेगा, कि किसका किसने क़र्ज़ा लिया है, फिर किसको कौन गाली

देगा, कौन किसको अपना ऋणी समझ कर दबावेगा। हड़हा और मुगल गाँव के गरीब भाइयों को लूटते हैं और बेइज्जत करते हैं। उनसे उनकी रक्षा करना धनी भाइयों का धर्म है।

इस समय जापान की एक सच्ची घटना लिखने योग्य है, उसको मन में बैठाना चाहिये। एक जमींदार ने देखा, कि उसके गाँव में बहुत-से काश्तकार महाजनों के ऋणी हो गये हैं और उनका ऋण से छुटकारा पाना कठिन है। वह रुपये वाला था; और खुद कम व्याज पर क़र्ज़ देकर उनका गला छुड़ा सकता था। पर उसने सोचा कि इस तरह क़र्ज़ देने से किसानों पर जो उसका अहसान और दबाव पड़ेगा, उससे उनमें अपने पाँव के बल खड़े होने और अपनी स्वतन्त्रता बनाये रहने में कसर पड़ेगी, जिससे उनकी अपने देश और समाज की सेवा की योग्यता में कमी होगी। इसलिए उसने एक पंचायती-बैंक द्वारा अपने रुपये किसानों को कम व्याज पर दिलवाये। कुछ बरसों में किसान न केवल ऋण से मुक्त हो गये, बल्कि आपस में मिल कर काम करने की, और एक दूसरे की मदद से अपने समाज की उन्नति की शिक्षा भी पा गये।

मुसलमान महाजन भी, जो सूद नहीं खाना चाहते हैं, इस बैंक में सम्मिलित हो सकेंगे, क्योंकि ऐसे बैंक से सूद नहीं मिलता, मुनाफ़ा बँटता है। उसी तरह जैसे किसी काम में अपना रुपया लगा कर वे मुनाफ़ा पाते हैं। ऐसी हालत में उनको भी कोई आपत्ति न होगी।

सा० सु० दू०—८

यह तो एक तरह की—यानी क़र्ज़ देने वाली पंचायती सभा की बात हुई। अब कुछ और तरह की सुनिए। जब किसी की आय अधिक न हो और वह ऋणी हो, या शादी-ब्याह, मरनी-करनी पर उसे ऋण लेना पड़ता हो, तो इससे तभी छुटकारा मिल सकता है, जब ख़र्च में कमी कर दी जाय। एक आदमी ऐसे मौक़े पर ख़र्च कम करता है, तो लोग हँसते हैं। पर अगर कुल सभा एक राय करके ख़र्च कम करदे, तब कौन हँसेगा? बल्कि एक नया रास्ता निकल पड़ेगा। दूसरी बात यह, कि जब फ़सल अच्छी हुई, समय अच्छा रहा या और तरह पर आमदनी हो गई, तब थोड़े दिनों तक खुले हाथ ख़र्च होने लगता है; पर आगे कष्ट उठाना पड़ता है, कर्ज़ लेना पड़ता है। कुछ लोग कहते हैं, कि भाग्य में होगा तो आगे भी मिल रहेगा। पर जब तंगी से कष्ट होने लगता है तब रोना सूझता है। निर्लज्जता के साथ घर के भाँड़े-बरतन, स्त्री का गहना गिरवी धरना पड़ता है। प्रश्न यह है कि अगर भाग्य पर ही सन्तोष करना था, तब रोना कैसा; तब तो तंगी में भी मस्त रहना और हँसना चाहिये। पर यह स्वभाव के विरुद्ध है। चींटी भी बरसात के दिनों के लिए पहले से सामान जमा कर लेती है। फिर अगर आदमी ऐसा न सोचे, तो समझना चाहिए कि उसकी बुद्धि मारी गई है। इन कहावतों को याद रखना चाहिए कि 'अग्रसोची सदा सुखी' और 'पिछली बुद्धि गँवार की'। इसलिए गँवार न बनकर यदि सुख चाहते हो, तो गाँव-गाँव में ऐसी पंचायती सभा बनाओ

जो एक राय करके अच्छे समय की पैदावार को बचा रखने का प्रबन्ध करे, जिससे वह आगे काम आवे। ऐसा पहले भी होता था।

एक तीसरी तरह की सभा बनाइए जिसमें गाँव के छोटे-मोटे मामले और झगड़े, जिनके लिए लोग थाना और कचहरी दौड़े जाते हैं, दलालों के फेर में पड़ते हैं, और जिनको पहले गाँव में ही तय कर लेते थे, फिर तय करिए। थोड़ी-थोड़ी बात पर, सिंचाई और मेंड़ के झगड़े पर, जो हाथ-पैर टूटते और सिर फूटते हैं उनसे बचिए। यदि ऐसा होगा तो मुक़द्मा लड़ने से शत्रुता की जो गाँठ पड़ जाती है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी नहीं सुलझती, उसकी जगह फिर मेल और सुमति होगी। आजकल फूट और झगड़ों के बढ़ने का कारण यह है, कि अब इसका चलन कम होता जा रहा है कि लोग एकत्र हुआ करें। आपस में बात-चीत, गाना-बजाना होता रहे, और जो कुछ उलटी-पलटी बात हो गई हो, भूल गई हो, उसको सुधार लें। पंचायती सभा से ये बातें फिर होने लगेंगी। हाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए, कि सभाओं में वे लोग न लिये जायँ, जो बुरे और झगड़ालू हों, जब तक कि वे अपने को सुधार न लें। बड़ाई इसमें है कि सभा की मेम्बरी ईमानदारी और अच्छी चाल की मुहर हो जाय।

प्रश्न

१—पंचायती सभाओं से हम क्या-क्या लाभ उठा सकते हैं?

२—किस-किस काम के लिए पंचायती सभाएँ बनाई जा सकती हैं? वे किस प्रकार बन सकती हैं?

अभ्यास

१—इनका अर्थ कहो और वाक्यों में प्रयोग करो :—

अड्डा जमाना, न बनना, पाँव तोड़ कर बैठना, जड़ पकड़ना, फूलना-फलना, आँख दिखाना, मन में बिठाना, छुटकारा पाना, अपने पाँव खड़े होना, खुले हाथ ख़र्च करना, और अच्छी चाल की सुहर।

२—अविद्या और फूट के फैलने से हमारे देश को क्या हानि हुई है, समझाओ।

—:※:—

१८—अफ्रीका के भीतर

[ऐंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल भूगोल, भारत-साम्राज्य लंका और अन्वेषण की कहानियाँ आदि के लेखक श्री मदनलाल जैन एम० ए०, एल० टी० ने भौगोलिक अनुसन्धान सम्बन्धी साहित्य का सृजन किया है। इस पाठ में वीरता, साहस और निर्भीकता पर दृष्टि रखकर अफ्रीका के भीतरी भागों की जानकारी प्राप्त करो।]

विस्तार की दृष्टि से अफ्रीका महाद्वीप का नम्बर पृथ्वी पर दूसरा है। यह भूखण्ड यूरोप के बहुत निकट है और एशिया से जुड़ा हुआ है। अत्यन्त प्राचीन काल में तीनों महाद्वीपों के बीच में व्यापार भी होता रहा है। परन्तु फिर भी इस महाद्वीप के



डाक्टर लिविग्स्टन

बहुत थोड़े से भाग को छोड़ कर शेष का विवरण आज से एक शताब्दी पहले बिल्कुल नहीं मालूम था। यह भी पता न था कि इसका आकार कैसा है। विशाल नील नदी महाद्वीप के उत्तर में है, परन्तु यह एक रहस्य था कि यह कितनी लम्बी है और इसका उद्गम कहाँ है। सहारा मरुस्थल, कांगो के वन, अस्वस्थ तट, उष्ण जलवायु, नदियों के प्रपात, मूलनिवासियों का वैर-भाव आदि कई कारणों से भीतर की खोज का कार्य बहुत विलम्ब से आरम्भ हुआ। अतएव इस महाद्वीप को 'अँधेरा महाद्वीप' कहते थे। इसके आन्तरिक भागों के अनुसन्धानकर्ताओं में लिविंग्स्टन, स्टेनले, मुंगोपार्क आदि कई साहसी अन्वेषकों के नाम स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं। परन्तु इन में डाक्टर लिविंग्स्टन सब से प्रसिद्ध हुआ है, क्योंकि उसकी खोजों का महत्व सब से अधिक है और उसने मूलनिवासियों में सभ्यता का प्रचार भी किया।

लिविंग्स्टन ने अपना कार्य सन् १८४१ ईसवी में आरम्भ किया और वह बत्तीस वर्ष तक इस कार्य में निरन्तर संलग्न रहा। वह दक्षिणी अफ्रीका के पूर्वी तट पर उतरा। उसने यहाँ के मूल-निवासियों की भाषा सीखी और उन लोगों में ईसाई धर्म का प्रचार किया। उसने उन्हें खेतों की सिंचाई करना भी सिखाया। वह एक उत्तम शिकारी भी था। एक बार सिंह के आखेट में उसके गहरी चोट आई। घायल शेर उसके एक कन्धे को नोच कर खा गया, और कुछ कठिनाई के बाद मारा गया घाव तो

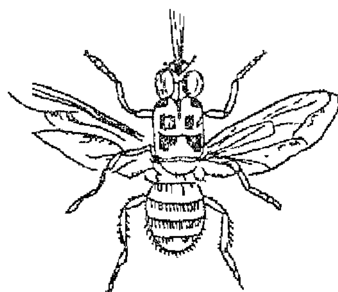
च्छा हो गया, परन्तु बाद को इस में कमी क
ा।



घायल शेर उसके एक कन्धे को नोच कर ख
तट के पीछे कालाहारी मरुभूमि थी। यात्री ने
ठानी। यह मरुभूमि सहारा की अपेक्षा बहुत
नी उजाड़ भी नहीं है। यहाँ उसे कई असभ्य ज
एक नये प्रकार के पौधे मिले जिनकी जड़ों में स
कार की ग्रन्थियाँ थीं और उन में पानी भरा रहता
.श्यकता नहीं कि सूखे प्रान्त में यह पानी बहुत
के कुएँ भी विचित्र थे। उनमें पानी बहुत कम
तले पत्थर की पपड़ी थी। इन से जल बड़ी

भरना पड़ता था, क्योंकि यदि तला टूट जाता था तो सारा पानी नीचे के रेत में समा जाता था। पानी की कमी के साथ भोजन की भी बहुत न्यूनता थी। लिविंगस्टन को मार्ग में कई बार टीड़ी, मेंढक आदि खा कर निर्वाह करना पड़ा। अन्त में वह नगामी झील पर पहुँचा, जिसको खोजने का श्रेय उसी को है।

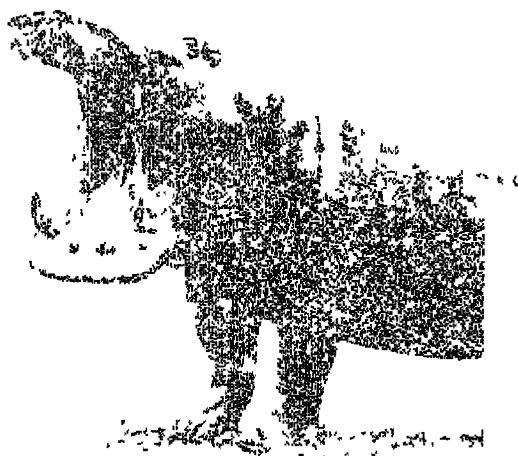
नगामी झील के आगे बढ़ने पर उसकी स्त्री, बच्चे व अन्य साथियों को महान् कष्ट हुआ, क्योंकि वहाँ पानी का बहुत अभाव था। प्यास के मारे सब व्याकुल हो रहे थे, परन्तु लिविंगस्टन ने धैर्य न छोड़ा। इस प्रान्त में उसे एक और विपत्ति का सामना करना पड़ा। यहाँ उसे ट्सैट सी नामक मक्खी मिली। यह मधु-मक्खी के आकार की थी। परन्तु इसके काटने से घोड़े और बैल मर जाते थे। उन्हें निरन्तर नींद आने की बीमारी हो जाती थी। लिविंगस्टन के भी कई पशु इन विचित्र मक्खियों के शिकार हो गये। इसी कारण इस प्रान्त में बोझा ढोने के लिए दासों की माँग बहुत बढ़ गई थी। दासों के क्रय-विक्रय का कार्य अरब-निवासी करते थे और लिविंगस्टन की यात्रा का एक उद्देश्य यह भी था कि वह इस अमानुषिक प्रथा का अन्त कर दे।



ट्सैट-सी मक्खी

इस प्रान्त को पार कर के यात्री जेम्बेसी नदी के दक्षिण में

स्थित एक राज्य में पहुँचा। एक वैरी के आक्रम
लिविंग्स्टन ने यहाँ के शासक की रक्षा की इसलिए
स्टन का बड़ा उपकार माना और आगे की यात्रा
भरपूर सहायता की। वहाँ से यात्री ने पश्चिमी तट
अधिक उत्तर की ओर, लोआँडा नामक पोतस्थल के
किया। उसकी यात्रा का प्रथम भाग जेम्बेसी नदी में



दरियाई घोड़ा

यहाँ निवासियों की ओर से आक्रमण का भय तो न
उसे नवीन प्रकार के शत्रुओं का सामना करना पड़ा
मगर और दरियाई घोड़े। आर्द्र जलवायु के कारण र
बड़ा प्रकोप था, और लिविंग्स्टन कई सप्ताह तक ज्

रहा। मगर और घड़ियाल नाव वालों को इतना तंग न करते थे जितना तट पर बैल हाँकने वालों को। एक को एक मगर खींच कर पानी में ले गया, परन्तु उसने पानी के भीतर जेब से चाकू निकाल कर उस के पेट में भोंक दिया, और इस प्रकार अपने प्राण बचाये। दरियाई घोड़े नावों पर आक्रमण कर बैठते थे। वहाँ के लोगों ने लिविंग्स्टन को यह युक्ति बताई कि ऐसी दशा में उसे तुरन्त पानी में डुबकी लगानी चाहिए और नदी के तले पर कुछ सैकण्डों तक रुक जाना चाहिए, जिस से दरियाई घोड़े आगे बढ़ जायँ। यहाँ उसने एक विचित्र चिड़िया भी देखी जो निर्भीकता-पूर्वक मगर के मुँह में घुस जाती थी और उन कीड़ों को खा जाती थी जो उसके तालू पर चिपट कर उसे व्याकुल करते थे।

आगे चल कर बलोंदा राज्य मिला। यहाँ तट पर उतरने पर उस प्रान्त की रानी ने उसका स्वागत किया। रानी का सारा शरीर लाल रंग से रँगा हुआ था, परन्तु वस्त्र के नाम पर उसके तन पर एक चिथड़ा भी न था। फिर उसको बहुत घने वन मिले। यहाँ के निवासियों का मुख्य भोजन कसावा नामक पौधे की जड़ें थीं। तट के रहने वाले सरदारों ने उसकी यात्रा में अनेक बाधाएँ उपस्थित कीं। प्रत्येक ने उससे भेंट माँगी। उसे अपने कई बैल तथा अन्य वस्तुएँ दे देनी पड़ीं। कई बार उनसे झगड़ा भी हुआ। अन्त में ज्वर से पीड़ित, थका-माँदा और धनहीन होकर वह पुर्तगाली बन्दरगाह लोआँडा पर पहुँचा। यहाँ उस की चिकित्सा हुई और वह ज्वर से मुक्त हो गया।

स्वस्थ होते ही उसने पूर्वी तट की ओर व
श्चय किया मार्ग में कोई विशेष घटना नहीं हुई



ज्वर से पीड़ित अवस्था मे लिविंग्स्टन की यात्रा

० मील चल कर ज़म्बेसी के प्रसिद्ध झरने के ि
को मूलनिवासी 'शब्दमय धूम्र' कहते थे। लिविं
को छः मील की दूरी से देखा। ऊपर उठते हु
ऐसे मालूम होते थे मानो घास का बहुत बड़ा ढेर
ो और उससे धुआँ उठ रहा हो। सारा दृश्य अत्



प्रतीत होता था। अन्त में प्रपात आ गया। वह बड़े साहस से प्रपात के किनारे पहुँच गया और वहाँ एक टापू पर जा उतरा। यहाँ से उसने नीचे की ओर झाँक कर देखा। पानी ४०० फुट की ऊँचाई से गिर रहा था। यह संसार का सब से बड़ा जल-प्रपात था। नदी लगभग एक मील चौड़ी थी, परन्तु झरने के नीचे केवल २० गज़ ही थी और एक गहरी कन्दरा में विलीन हो जाती थी। पानी के गिरने का शब्द इतने ज़ोर से होता था कि कानों पड़ी आवाज़ नहीं सुनाई देती थी, और यह गर्जन मीलों दूर से सुन पड़ता था। इस सुन्दर झरने का नाम उसने अपने देश की रानी विक्टोरिया के नाम पर 'विक्टोरिया प्रपात' रक्खा।

पूर्वी तट पर पहुँचने के बाद सोलह वर्ष तक महाद्वीप में घूम-फिर कर लिविंग्स्टन अपने देश को लौट गया, और एक वर्ष पीछे फिर आ गया। पहले उसने ज़ेम्बेसी नदी के निचले भाग का अनुसन्धान किया और फिर उस की सहायक शीरे नदी में चल पड़ा। यहाँ पर मगर उसकी नाव को एक बड़ा जन्तु समझ कर कई बार आक्रमण करने को दौड़े परन्तु पास आने पर अपनी भूल मालूम करके पीछे हट गये। अन्त में वह न्यासा झील तक पहुँच गया। यहाँ से वह स्थल-मार्ग द्वारा एक बार फिर विक्टोरिया प्रपात पहुँचा, और वहाँ से लौट कर पुनः न्यासा झील पहुँचा। वह झील में एक डोंगी में बैठ कर खूब घूमा। एक बार उसकी डोंगी प्रबल आँधी में डाँवाडोल होने लगी। परन्तु उसके साथ एक कुशल नाविक था, जिसकी सहायता से छः घण्टे के

संघर्ष के पश्चात् उसे त्राण मिला। झील के किनारे
दासों के व्यापार के दुष्परिणाम स्पष्ट देख पड़ते थे
की उर्वरा भूमि उनके पकड़े जाने के कारण जन-श
थी। जहाँ-कहीं लिविंग्स्टन पहुँचा उसने इस व्य
करने का भरसक प्रयत्न किया।

धनहीन होने के कारण लिविंग्स्टन अधिक अनुस
सका, क्योंकि अब उसे इङ्गलैंड से आर्थिक सहायता



लिविंग्स्टन और स्टैनले की भेंट

हो गई थी। धन प्राप्त करने की अभिलाषा से अब
वाष्प-नौका को बेचना निश्चय किया। वह इसी नौक

हिन्द महासागर पार करके बम्बई पहुँचा। यह बड़े ही साहस का कार्य था, क्योंकि यह नाव नदी के लिए थी और समुद्र पर चलने के लिए सर्वथा अयोग्य थी। यहाँ से वह इँग्लैंड लौटा और वहाँ उसे बेच कर तीसरी बार फिर अफ्रीका वापस आया। उसने बैंगवीकलू झील को ढूँढ़ा और टैंग्यानिका झील के पार्श्ववर्ती प्रान्त का भी अनुसन्धान किया। अब उसकी दशा बहुत बुरी हो गई। उसका धन समाप्त हो गया, भोजन की सामग्री और दवाएँ लूट ली गईं, बहुत से नौकर किनारा कर गये और उसे रोग ने आ घेरा। सन् १८७१ ईसवी में प्रसिद्ध यात्री स्टैनले उसे ढूँढ़ने के लिए भेजा गया, क्योंकि इँग्लैंड में उसका कुशल समाचार पाँच वर्ष से नहीं पहुँचा था और बहुतों ने उसकी मृत्यु की कल्पना कर ली थी। उसने उसे उजीजी नामक स्थान पर रुग्णावस्था में पाया। परन्तु स्टैनले की शुश्रूषा के कारण वह शीघ्र ही स्वस्थ हो गया।

चंगा होते ही उसने फिर कांगो नदी के उद्गम का अनुसन्धान करने का संकल्प किया। उसे इस कार्य में कुछ सफलता भी हुई। परन्तु सन् १८७३ ईसवी में वह इस संसार से चल बसा। मूल-निवासी उसको सदा अपना शुभचिन्तक समझते रहे और उससे इतना स्नेह करते थे कि वे उसके मृत शरीर को आठ महीने के कठिन परिश्रम के पश्चात् बनों और दलदलों को लाँघते हुए समुद्रतट पर ले गये। यहाँ से शव इङ्गलैंड भेज दिया गया और राजा-महाराजाओं व देश के अन्य महापुरुषों की समाधियों के मध्य में वेस्ट-मिनिस्टर ऐबे में गाड़ दिया गया।

प्रश्न

१—विस्तार की दृष्टि से पृथ्वी पर अफ्रीका का कौन सा नम्बर है ?

२—लिविंग्स्टन कौन था ? उसके विषय में तुम क्या जानते हो ?

३—अफ्रीका को अँधेरा महाद्वीप क्यों कहते थे ?

४—नगामी झील से आगे बढ़ने पर उसकी स्त्री-बच्चों आदि को महान् कष्ट क्यों हुआ ?

५—ज़ेम्बेसी झरने को मूल निवासी किस नाम से पुकारते थे ?

६—लिविंग्स्टन ने अपनी वाष्प-नौका को बेचने का निश्चय क्यों किया ?

अभ्यास

१—लिविंग्स्टन की यात्रा का वर्णन अपने शब्दों में करो।

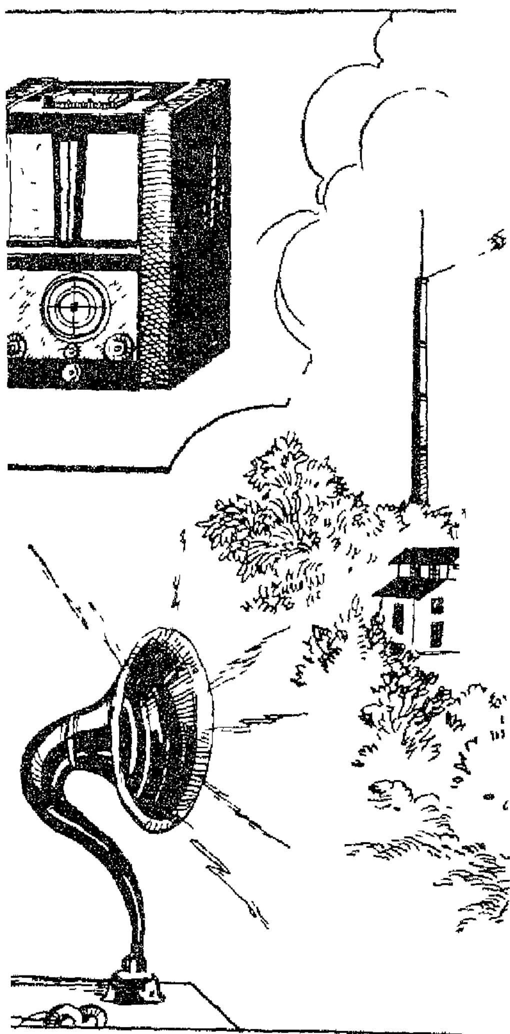
२—तुमने कोई यात्रा की हो तो उसका वर्णन करो।

३—अन्वेषण और आविष्कार का अन्तर उदाहरण देकर समझाओ।

४—अनुसन्धान, शुश्रूषा, मकरा और उर्वरा को अर्थ सहित अपने शब्द कोष मे लिख लो।

५—अध्यवसाय की व्याख्या करो।





रेडियो

१६—रेडियो के चमत्कार

[हरि जी गोविल एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक और रेडियो-विशेषज्ञ हैं। उनका जीवन उद्योग और अध्यवसाय का जीवन है। वे देवनागरी लिपि के सुधार में बहुत दिलचस्पी लेते हैं। पंद्रह साल अमेरिका में रहकर और सैकड़ों कठिनाइयाँ झेल कर आपने देवनागरी लाइनोटाइप का आविष्कार किया है। हिन्दी-संसार को गोविल जी से बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

'विश्वमित्र', 'विशाल-भारत' आदि मासिक पत्रिकाओं में आप वैज्ञानिक लेख लिख-लिख कर हिन्दी की अपार सेवा कर रहे हैं। 'रेडियो के चमत्कार' इन्हीं लेखों में से एक है।]

पुराणों में हमने पढ़ा है कि हमारे ऋषि-मुनि उड़कर आकाश-मार्ग से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाया करते थे। वे एक स्थान पर बैठ कर दूसरे स्थान को देख सकते थे और वहाँ का वार्तालाप सुन सकते थे। श्री रामचन्द्रजी विमान से उड़कर लङ्का से अयोध्या आए थे। सञ्जय ने कुरुक्षेत्र के कौरव-पाण्डव युद्ध का सम्पूर्ण दृश्य हस्तिनापुर में बैठकर दिव्य-दृष्टि से देखा था और उसका पूरा विवरण महाराजा धृतराष्ट्र को सुनाया था। हम लोग आज तक इन कथाओं को कोरी कल्पनाएँ ही समझते थे। किन्तु धन्यवाद है आधुनिक विज्ञान को कि वह धीरे-धीरे इन 'कोरी कल्पनाओं' को सत्य सिद्ध करता जा रहा है। वायु-यान के अविष्कार ने श्री रामचन्द्र के पुष्पक विमान को सत्य

प्रसारित कर दिया। आज रेडियो के आविष्कार से संजय की दिव्य-श्रवण-शक्ति की बात सत्य सिद्ध हो रही है। दिव्य दृष्टि के भी सत्य सिद्ध होने में अब बहुत देर नहीं है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि ५-६ वर्ष में दिव्य-दृष्टि का यन्त्र (टेलीविजन) भी बाजार में बिकने लगेगा।

पुराणों में वर्णित दिव्य-दृष्टि और दिव्य-श्रवण-शक्ति तथा पश्चिमी विद्वानों द्वारा आविष्कृत दिव्य-दृष्टि (टेलीविजन) और दिव्य-श्रवण-शक्ति (रेडियो लिसनिंग) में एक महत्त्वपूर्ण भेद है। भारतीय ऋषि-मुनि मानसिक शक्ति को विकसित कर योग-सिद्धि द्वारा आकाश के परमाणुओं को ग्रहण करते थे और इस प्रकार दिव्य-श्रवण-शक्ति और दिव्य-दृष्टि प्राप्त करते थे; किन्तु पश्चिमी वैज्ञानिक आकाश के उन परमाणुओं को यन्त्र द्वारा ग्रहण करते हैं। कौन कह सकता है कि पश्चिमी विज्ञान के विकास की गति इसी स्थान पर रुक जायगी और यन्त्र की दासता से वह कभी मुक्त ही न होगा! लक्षणों से ज्ञात होता है कि अन्त में आधुनिक विज्ञान भी उसी स्थान पर पहुँच जायगा जहाँ हमारे ऋषि-मुनि हजारों वर्ष पहले पहुँचे थे।

इस वैज्ञानिक युग में सार्वजनिक शिक्षा के तीन साधन हैं— (१) प्रेस, (२) चित्रपट और (३) रेडियो। इन सब में रेडियो का स्थान बहुत ऊँचा है। नये जगत् की सृष्टि में यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग लेने जा रहा है। कल्पना कीजिए कि नेपाल की तराई में पचीस-तीस मनुष्यों की आबादी का एक छोटा सा गाँव

है। वहाँ न तो कोई समाचार-पत्र ही आसानी से पहुँच सकता है और न कोई चित्रपट ही। बरसात के मौसम में वहाँ पहुँचने में उतना ही समय लगता है जितना कलकत्ते से चीन जाने में। ऐसी स्थिति में उस गाँव के अज्ञानान्धकार में प्रकाश पहुँचाने और उस गाँव वालों को शिक्षित करने का रेडियो के सिवा कोई उपाय नहीं है। यदि उस गाँव में एक रेडियो लगा दिया जाय तो उन्हें अपने देश और संसार का समाचार नित्य मिलता रहेगा। समाज-सुधार, स्वास्थ्य और कृषि-संबन्धी व्याख्यान सुनकर वे बराबर लाभ उठाते रहेंगे और हास्य तथा आमोद-प्रमोद द्वारा अपने नीरस और एकान्त जीवन को सरस और संसार से संबद्ध बना सकेंगे।

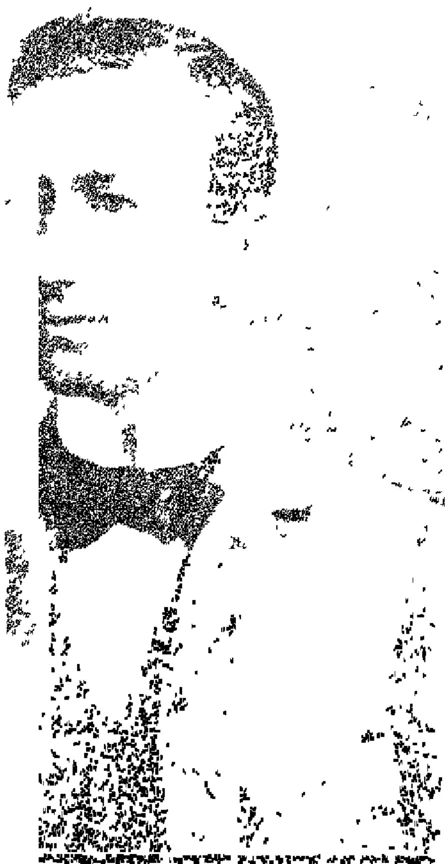
इस विज्ञान-युग में रेडियो का आविष्कार सबसे अधिक चमत्कारपूर्ण है। इसका राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में अद्भुत प्रभाव है और इसी कारण जर्मनी और आस्ट्रिया की पिछली क्रान्तियों में सबसे पहले रेडियो ब्राडकास्टिंग स्टेशनों पर ही क़ब्ज़ा किया गया था। रेडियो के आविष्कार का श्रेय सेनेटर मारकोनी को है, यद्यपि उनसे पहले भी कुछ जर्मन वैज्ञानिकों ने इसकी कल्पना की थी। मारकोनी के आविष्कार का फल बेतार-का-तार था, जिससे केवल संकेत भेजा जा सकता था। बेतार-के-तार द्वारा शब्द भेजने का आविष्कार डा० लीडिफरिस्ट, डा० एलेक्जेण्डरसन प्रभृति अमेरिकन विद्युत्-वैज्ञानिकों ने किया। टेलीग्राम और टेलीफोन

जो भेद है वही भेद बेतार-के-तार और इस रेडियो में है। ...ते हैं कि सेनेटर मारकोनी के साथ ही भारतीय वैज्ञानिक सर ...दीशचन्द्र बोस ने भी रेडियो का आविष्कार किया था; किन्तु ...से पहले ही मारकोनी ने संसार में इसकी घोषणा कर दी, ...लिए सर जगदीश ने उधर से अपना ध्यान हटा कर वनस्पति-...वन की ओर लगाया।



श्रीयुत जगदीशचन्द्र बोस

आज से १५ वर्ष पहले रेडियो सिर्फ एक वैज्ञानिक खिलवाड़ था। सन् १९२० ई० में कोई यह स्वप्न भी नहीं देख सकता था कि घर में आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे सारे संसार के गान और भाषण सुने जा सकते हैं। सन् १९२३-२४ में अमेरिका में रेडियो की बड़ी धूम थी। हर ...ो की ज़बान पर इसी की चर्चा थी। अमेरिकन युवक तीन-



मारकोनी



चार रुपये में रेडियो के पार्ट खरीदकर अपने हाथ से क्रिस्टल सेट बनाते और आकाशवाणी सुना करते थे।

उस समय रेडियो के उस यन्त्र को टेलीफ़ोन के समान सुनना पड़ता था, किन्तु इसके एक ही दो साल बाद बिजली की बैटरी लगा दी गई और फिर इसे कान में लगाने की जरूरत नहीं रही। इसी प्रकार थोड़े-बहुत और भी संशोधन हुए और तीन ही चार वर्ष के भीतर रेडियो में युगान्तर-सा हो गया। इतने अल्प काल में इतनी उन्नति इतिहास में आज तक किसी भी उद्योग-धन्धे में नहीं हुई। कुछ ही साल पहले जो महज खिलौना था वह इतने बड़े कारबार में बदल गया है कि आज सिर्फ अमेरिका ही में अरबों रुपये उसमें लगे हैं। लाखों मनुष्य उसमें काम करते हैं और प्रतिदिन की आय कम से कम ६० लाख रुपया है। रेडियो में पहले यह दोष समझा जाता था कि वह किसी संवाद को गोपनीय नहीं रख सकता। अमेरिका वालों ने उसी दोष को गुण में परिणत किया और उससे ब्राडकास्टिंग का काम लेना शुरू किया।

आज अमेरिका में बिरला ही घर ऐसा होगा जिसमें रेडियो का श्रवण-यंत्र न लगा हो। कुछ घरों में तो तीन-तीन चार-चार हैं। सन् १९३० की अमेरिका की मनुष्य-गणना में रेडियो की भी गणना की गई थी और यह फल प्राप्त हुआ था कि औसतन प्रत्येक दूसरे घर में रेडियो का श्रवण-यंत्र पाया जाता है। वहाँ रेडियो-श्रवण-यंत्र लगाने में नाममात्र का ही खर्च पड़ता है।

अमेरिका में कोई फीस नहीं देनी पड़ती और न इसके लिए कोई लाइसेंस ही लेना पड़ता है, जैसा कि भारत में है। अमेरिका वाले रेडियो के श्रवण-यंत्र पर कर लगाना वैसा ही समझते हैं जैसा अखबार पढ़ने पर कर लगाना। यह श्रवण-यंत्र अमेरिका में पन्द्रह-बीस रुपये में मिल जाता है जो उस समृद्धिशाली देश में कोई चीज नहीं है। वह एक मजदूर की भी मुश्किल से एक या डेढ़ दिन की तनख्वाह है। इसके अलावा बहुत से अमेरिकन अपने हाथ से भी श्रवण-यंत्र बना लिया करते हैं।

रेडियो के आविष्कार ने अमेरिका वालों के जीवन को बड़ा रसमय बना दिया है। सबेरे ६-७ बजे से आरम्भ कर रात में १२-१ बजे तक रेडियो बराबर अपना काम करता रहता है। प्रातः काल मेज पर नाश्ता हो रहा है और रेडियो मधुर गान सुना रहा है; ६-१० बजे महिलाएँ मकान की सफाई कर रही हैं और रेडियो द्वारा इसके उपदेश सुन रही हैं; १२-१ बजे घर में खाना पक रहा है और रेडियो द्वारा किसी बड़े डाक्टर का स्वास्थ्य तथा भोजन के संबंध में भाषण सुना जा रहा है। भाषण यदि पसन्द नहीं है तो ट्यून बदलकर दूसरे ब्राडकास्टिंग स्टेशन के गानवाद्य, मनोरंजन या नाटक जो जी चाहे अपनी इच्छानुसार जब चाहें, सुनिए।

आधुनिक युग के मानव-मस्तिष्क ने समाज के कल्याण और शिक्षा के लिए एक से एक बढ़कर अद्भुत और चमत्कार-पूर्ण आविष्कार किए; किन्तु स्वार्थियों ने गुण, ज्ञान, भाव और

सेवा सब कुछ व्यापार की तराजू पर रख दिया। उन लोगों ने रेडियो जैसे लोकोपकारी पदार्थ को भी लोक-सेवा से वंचित कर दिया और उसे अपने स्वार्थ-साधन का एक द्वार बना डाला। अमेरिका को छोड़कर अन्यान्य सारे देशों की सरकारों ने रेडियो पर एकाधिपत्य स्थापित कर रखा है। जैसा कि हमने ऊपर कहा है, अमेरिका में श्रवण-यंत्रों पर कोई नियंत्रण नहीं है। परन्तु ब्राडकास्टिंग पर उसने भी कुछ नियंत्रण कर रखा है। अमेरिका की सरकार ने एक रेडियो-कमीशन नियुक्त किया है जो उन संस्थाओं को लाइसेंस देता है जो जनता की सेवा के लिए मनोरंजन, समाचार, शिक्षा, विज्ञान आदि का प्रचार करने के लिए ब्राडकास्टिंग स्टेशन खोलना चाहती हैं। जिस प्रकार समाचार-पत्रों की आय विज्ञापनों से होती है, उसी प्रकार ये ब्राडकास्टिंग स्टेशन अपना कुछ समय विज्ञापन-दाताओं के हाथ बेचते हैं जिससे उनका सिर्फ़ खर्च ही नहीं चलता है बल्कि बहुत बड़ी आमदनी होती है।

संसार में आज जितने भी ब्राडकास्टिंग स्टेशन हैं उनके आधे (लगभग ६००) अमेरिका में ही हैं। सिर्फ़ न्यूयार्क में दस-बारह बड़े-बड़े ब्राडकास्टिंग स्टेशन हैं और छोटे छोटे एमेच्योर और स्टेशन तो बहुत अधिक हैं।

ग्रेट-ब्रिटेन या यूरोप के अन्य देशों में अमेरिका जैसी सुविधाएँ नहीं हैं। उनमें सरकारें ख़ुद ब्राडकास्टिंग स्टेशनों को चलाती हैं और पूर्ण-रूप से अपने नियंत्रण में रखती हैं। इन ब्राडकास्टिंग

स्टेशनों का खर्च वे श्रवण-यंत्रों पर लाइसेंस लगाकर वसूल करती हैं। अतएव यूरोप के देशों में लाइसेंस लेकर ही कोई मनुष्य अपने मकान या कमरे में रेडियो का श्रवण-यंत्र लगा सकता है। दूसरे शब्दों में, अमेरिका को छोड़कर अन्य देशों में रेडियो पर वहाँ की सरकार ने अपना एकाधिपत्य स्थापित कर रखा है। श्रवण-यंत्र रखने वाले कर भी दें और सुनें भी वही प्रोग्राम, जिसे सरकार पसन्द करे। हाँ, दूसरे देशों के प्रोग्राम भी सुने जा सकते हैं, परन्तु साधारणतया अपने देश के प्रोग्राम में ही अधिकतर दिलचस्पी होती है। अमेरिका में अपने देश के ही प्रोग्रामों में से चुनाव करने के पर्याप्त साधन हैं, परन्तु यूरोप में बहुत ही कम।

आस्ट्रेलिया की सरकार ने अमेरिका और यूरोप की दोनों ही प्रथाओं का अनुकरण किया है। वहाँ श्रवण-यंत्र के लिए लाइसेंस लेना पड़ता है और उसकी फ़ीस भी देनी पड़ती है। इस फ़ीस द्वारा सरकार एक ब्राडकास्टिंग स्टेशन चलाती है, किन्तु साथ ही व्यापारी कम्पनियाँ भी हैं जो लाइसेंस लेकर व्यापारिक दृष्टि से अमेरिका के समान ब्राडकास्टिंग स्टेशन चलाती हैं। इस प्रकार आस्ट्रेलिया में श्रवण-यंत्र के लिए फीस तो देनी होती है परन्तु उनको चुनाव करने का काफ़ी मौक़ा मिलता है।

रेडियो का वास्तविक महत्त्व अभी तक भारतवासियों की समझ में नहीं आया। भारत जैसे देश के लिए रेडियो एक अनिवार्य आवश्यकता है। यहाँ साक्षर मनुष्यों की संख्या तीन

की सदी से अधिक नहीं है; और पुस्तक और पत्र पढ़ने की आदत तो इने-गिने मनुष्यों में ही होती है। स्वास्थ्य-संबंधी मूल सिद्धांतों को भी अपढ़ जनता बहुत कम जानती है। समस्त देश सात लाख गाँवों में बिखरा पड़ा है। रेडियो द्वारा भारत के गाँव-गाँव और घर-घर में एक नया जीवन डाला जा सकता है। इससे एक नई ज्योति फैलाई जा सकती है। शिक्षा, समाज-सुधार, स्वास्थ्य और कृषि की उन्नति का काम जो सालों में होगा वह रेडियो द्वारा कुछ ही दिनों में हो सकता है। राष्ट्र-संगठन के कार्य में भी समाचार-पत्रों की भाँति रेडियो की अत्यन्त आवश्यकता है। इससे भारत की राष्ट्र भाषा के प्रश्न को हल करने में भी सहायता मिलेगी। रेडियो द्वारा १० वर्ष के अन्दर सम्पूर्ण भारत को हिन्दी भाषा सिखलाई जा सकती है।

भारतवर्ष में रेडियो अभी तक बच्चों का खिलौना बना हुआ है। हिन्दुस्तान में रेडियो द्वारा जो प्रोग्राम दिया जाता है उसमें जनता की अभिरुचि का तनिक भी ध्यान नहीं रखा जाता। वह इतना निम्न कोटि का होता है कि उसे कोई भी सुसंस्कृत व्यक्ति सुनना नहीं चाहेगा। यद्यपि रेडियो द्वारा समस्त भारतवर्ष में एक भाषा स्थापित की जा सकती है, परन्तु रेडियो ब्राडकास्टिंग के इस संचालन से जैसा आज कल हमारे यहाँ हो रहा है न तो भाषाओं में समानता लाना ही संभव है और न अपढ़ जनता को किसी प्रकार की शिक्षा ही देना। यहाँ रेडियो संबंधी उद्योग के विस्तार में जनता की रुचि, भारत-सरकार की उदासीनता, भारतीय रुचि

के अनुकूल ब्राडकास्टिंग-कंपनियों के प्रोग्राम का न होना, तथा देश की दरिद्रता आदि अनेक बाधाएं हैं। इन्हें दूर करने के लिए और रेडियो को अधिक उपयोगी बनाने के लिए क्रियात्मक आन्दोलन करना हमारे एसेम्बली के सदस्यों और देश-भक्त नेताओं का परम कर्त्तव्य है। इसके लिए काफी धन, समय और योग्यता की आवश्यकता है। भारतीय विश्वविद्यालयों को भी रेडियो की ओर ध्यान देना चाहिए। उन्हें चाहिए कि प्रतिवर्ष कम से कम एक विद्यार्थी रेडियो संबंधी विशेष अध्ययन करने के लिए अमेरिका प्रभृति देशों को भेजें और भारतीय-रुचि के अनुकूल कला, शिक्षा, साहित्य और मनोरंजन का प्रचार करने के लिए अपने यहाँ ब्राडकास्टिंग-स्टेशन खोलने का प्रयत्न करें।

प्रश्न

१—रेडियो क्या है? इसका आविष्कार किसने किया? रेडियो जीवन को रसमय किस प्रकार बना सकता है?

२—ऋषि-मुनियों की दिव्य-श्रवण-शक्ति और आधुनिक विज्ञान की रेडियो-श्रवण-शक्ति में क्या अन्तर है? समझाओ।

३—इस वैज्ञानिक युग में शिक्षा के प्रधान साधन कौन-कौन हैं? उनमें रेडियो का स्थान विशेष महत्त्व का किस प्रकार है?

४—भारत के लिए रेडियो क्यों अधिक उपयोगी है? इसकी उन्नति में यहाँ कौन-कौन सी बाधाएँ हैं? ये बाधाएँ किस प्रकार दूर की जा सकती हैं?

अभ्यास

१—निम्नलिखित पर सन्तेप नोट लिखो —

रेडियो लिसनिङ्ग; टेलीविज़न; टेलीफोन ; बेतार-का-तार; ब्राड-कास्टिङ्ग और ब्राडकास्टिङ्ग स्टेशन ; सेनेटर मारकोनी तथा सर जगदीशचन्द्र बोस ।

२०—महारानी अहिल्याबाई का पत्र राघोबा के नाम

[द्विवेदी युग के सब से अधिक लोकप्रिय, राष्ट्रीय कवि, भक्त हृदय और साहित्य प्रेमी श्री मैथिली शरण गुप्त लिखित राघोबा को लिखे पत्र में अहिल्याबाई का मधुर व्यंग्य, उनका चरित्र, स्वभाव एवं वाक्चातुरी देखो ।

गुप्तजी की रचनाएँ—

भारत भारती, जयद्रथ वध, पंचवटी, अनघ, साकेत (महाकाव्य), यशोधरा और द्वापर पढ़ो]

जो आप आकर यहाँ करने लड़ाई ;
देने चले समर में मुझको बड़ाई ।
मैं धन्य भाग अपना यह जानती हूँ ;
मैं भी अवश्य कुछ हूँ, यह मानती हूँ ॥ १ ॥
होता कहीं न मुझ में बल का विकास ;
तो व्यर्थ आप फिर क्यों करते प्रयास ?
विख्यात वीर करते जिससे विरोध ;
होता किसे फिर भला वह तुच्छ बोध ॥ २ ॥

ऐसा महत्व अति दुर्लभ है सदैव ;
मैं हूँ कृतज्ञ इसके हित सर्वथैव ।
दूँ न आपको यदि मैं शत साधुवाद ;
होगा भला न फिर क्या मुझसे प्रमाद ॥ ३ ॥
लेते विचार पहले परिणाम आर्य ;
पीछे सहर्ष करते निज इष्ट कार्य ।
कैसे कहूँ फिर कि आप बिना विचारे ;
है आ रहे समर के, सज साज सारे ॥ ४ ॥
होते न निर्भ्रम परन्तु सभी विचार ;
जो भूल हो उचित है उसका सुधार ।
है भ्रान्ति-मूल बहुधा मद और स्वार्थ ;
कीजे क्षमा इस यथार्थ निवेदनार्थ ॥ ५ ॥
हाँ तो बजे अब भयंकर युद्ध भेरी ;
है स्वागतार्थ सब सज्जित सैन मेरी ।
तैयार हूँ सब प्रकार सदा यहाँ मैं ;
आदेश से अलग हो सकती कहाँ मैं ॥ ६ ॥
जो ज्ञात हो उचित आप करें भले ही ;
हो हानि-लाभ कुछ भी न डरें भले ही ।
लीजे परन्तु फिर भी इतना विचार ;
हो निन्द्य कार्य जिसमें न किसी प्रकार ॥ ७ ॥
जो लोभ देकर दिखा कर मोह-माया ;
है आपको मम विरुद्ध उभाड़ लाया ।

क्या ज्ञात है यह कि है वह कौन व्यक्ति ?
लीजै विचार उसकी कुछ स्वामि-भक्ति ॥ ८ ॥
मेरे अमात्य-वर की यह है बड़ाई ;
मेरे विरुद्ध जिसको यह बुद्धि आई ।
लाया चढ़ा कर यहाँ वह आपको है ;
ऐसा मनुष्य डरता किस पाप को है ॥ ९ ॥
यों मन्त्रि-धर्म जिसने अपना निबाहा ;
खाया सदैव जिसका उसको न चाहा ।
ऐसे 'महा-पुरुष' के कथनानुसार ;
हैं आप क्या कर रहे करिये विचार ॥१०॥
विद्रोह जो कर रहा मुझसे अभी है ;
क्या आप से कर नहीं सकता कभी है ?
जो तुच्छ बात पर छोड़ चुका स्वधर्म ;
है क्या भला उस नराधम को अकर्म ॥११॥
आश्चर्य है कि मति-मंडित आप जैसे ;
ऐसे कृतघ्न पर हैं अनुकूल कैसे ?
होते प्रलोभ-वश अन्ध अभिज्ञ भी क्या ?
खोते विवेक सहसा वर विज्ञ भी क्या ॥१२॥
वीराग्रगण्य ! यह भी अब सोच लीजे ;
हूजे न रुष्ट कुछ और विचार कीजे ।
संग्राम का प्रकट क्या परिणाम होगा ?
क्या आपका कलह से कुछ नाम होगा ॥१३॥

रक्त प्रवाह सबसे पहिले बहेगा ;
दायित्व आप पर ही उसका रहेगा ।
आरम्भ हानि परिपूरित है सदैव ;
है जानता इति-कथा बस एक दैव ॥१४॥
शोभामयी वसुमती विकराल होगी ;
शान्तस्थली रुधिर पूरित लाल होगी ।
होंगे विनष्ट बहु सैनिक लोग व्यर्थ ;
तो सोचिये किस लिये इतना अनर्थ ॥१५॥
होंगे न आप इसके परिणाम-भोगी ?
है हेतु अल्प पर हानि विशेष होगी ।
श्रीमान् ने उचित कार्य नहीं किया है ;
जो मान एक खल का कहना लिया है ॥१६॥
हाँ, सावधान वह साँप समीप ही है ;
दुर्योग से न दिन और न दीप ही है ।
पीछे पड़ा खल-पिशाच भुला रहा है ;
विश्वास-घातक अनर्थ बुला रहा है ॥१७॥
संग्राम में विजय एक अवश्य पाता ;
जाना परन्तु पहिले कुछ भी न जाता ।
मैं ही पराजित हुई यदि ; मान लीजे ;
होगी न कीर्ति फिर भी, यह जान लीजे ॥१८॥
श्रीमान् को सब महाबली मानते हैं ;
है नारी जाति अबला, सब जानते हैं ।

दैवात् परन्तु मुझसे यदि आप हारे ;
तो लुप्त ही समझिये निज गीत सारे ॥१९॥
जो हो सचेत कर दे निज शत्रु को भी ;
देता हुआ उचित सम्मति हो न लोभी।
मानें न वैर शुभ-भाषण में किसी से ;
मैंने किया यह निवेदन है इसी से ॥२०॥
कर्त्तव्य पत्र लिख के यह पालती हूँ ;
चातुर्य्य से अपना भय टालती हूँ।
होना विचूर्ण उस मस्तक का भला है ;
जो शत्रु से सभय हो झुकने चला है ॥२१॥
जो योग्य था कह दिया अब आप जानें ;
है प्रार्थना बस यही कि बुरा न मानें।
जो है भविष्य वह होकर ही रहेगा ;
जैसा बहे पवन निश्चय ही बहेगा ॥२२॥

प्रश्न

१—इस पद्य के पढ़ने से अहिल्याबाई के चारित्र और स्वभाव पर क्या प्रकाश पड़ता है ?

२—इस पत्र का राघोबा पर क्या प्रभाव पड़ा होगा ?

३—यदि राघोबा के स्थान पर तुम होते तो इस पत्र को पढ़ कर क्या करते ?

४—अहिल्याबाई ने संग्राम से क्या क्या हानियाँ दिखाई हैं ?

५—संग्राम का परिणाम पहले से क्यों नहीं जाना जाता ?

अभ्यास

१—इस पद्य में बड़ा मधुर व्यग्य है। उस व्यग्य को स्पष्ट करो।

२—अहिल्या बाई की वाक्-चातुरी को प्रकट करने वाली पंक्तियों का उल्लेख करो।

३—कल्पना करो कि तुम्हारे शत्रु ने तुम्हें युद्ध के लिये ललकारा है—तुम युद्ध से डरते नहीं हो किन्तु युद्ध करना नहीं चाहते—तुम उसे अपने हृदय की इच्छा प्रकट करते हुए एक पत्र लिखो।

४—इस पत्र में जिनका जिक्र हुआ है उनका जीवन चरित पढ़ो।

५—उलटा अर्थ देने वाले शब्द लिखो :—

विकास, विरोध, प्रमोद, हर्ष, निन्द्य, कृतघ्न, विज्ञ।

६—भ्रान्ति और सन्देह का अन्तर उदाहरण देकर समझाओ।

पाठ की सहायता

व्यंग्य = ताना, चुटकी, अर्थ प्रकट करने की शब्द की वह शक्ति जिससे उसके सामान्य को छोड़कर विशेष अर्थ ग्रहण किया जाय। व्यग्य मीठी छुरी के समान घाव करता है।

साहित्य में व्यंग्यात्मक काव्य उत्तम कोटिका माना जाता है। सुधार के विचार से किया हुआ व्यंग्य उत्तम है। केवल कष्ट पहुँचाने के लिये इसका प्रयोग श्रेयस्कर नहीं।

भ्रान्ति = भूल, एक वस्तुको दूसरी वस्तु समझ लेना। यथा रस्सी को साँप जान कर भयभीत हो जाना।

सन्देह =समान वस्तुओं को देख कर यह निर्णय न कर पाना कि यह कौन सी वस्तु है ? जैसे अँधेरे में पड़ी रस्सी के लिए सोचना कि यह साँप है, न जाने रस्सी है इत्यादि ।

—:o:—

२१—नल का दुस्तर दूत-कार्य

[पं० महाबीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म संवत् १६२१ वि० में रायबरेली ज़िले के दौलतपुर गाँव में हुआ था । आप १५, १६ वर्ष तक सरस्वती के यशस्वी सम्पादक रह चुके हैं । आपकी हिन्दी भाषा की सेवा अनुपम और वर्णनातीत है । हिन्दी को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय आपही को है । आप खरी आलोचना के लिए भी विख्यात हैं ।

द्विवेदी जी लिखित इस पाठ में सुन्दर भाषा-शैली में नल का दुस्तर दूत-कार्य देखो]

प्राचीन समय में भारत का अधिकतर वह अंश, जिसे आज कल कुमायूँ कहते हैं, निषध-देश के नाम से प्रसिद्ध था । अलका उसकी राजधानी थी । उसमें वीरसेन का पुत्र नल नामक एक महाप्रतापी राजा राज्य करता था ।

नल एक दिन मृगया के लिए राजधानी से बाहर निकला । आखेट करते-करते वह अकेला दूर तक अरण्य में निकल गया । वहाँ उसने एक बड़ा ही मनोहर जलाशय देखा उसके तट पर एक अलौकिक रंग-रूपधारी हंस, थक जाने के कारण, आँखें बन्द किये, बैठा आराम कर रहा था । नल की दृष्टि उस पर पड़ी ।

चुपचाप, दबे पैरों, जाकर राजा ने उसे पकड़ लिया। हंस का विचरण स्वातन्त्र्य जाता रहा। पराधीनता के दुःख और अपनी स्त्री तथा माता के वियोग-जन्य ताप की चिन्ता से वह विह्वल हो उठा। उसने बहुत विलाप किया। मुक्ति-दान के लिए राजा से उसने प्रार्थना भी की और एक तुच्छ पक्षी पर अनुचित बल-प्रयोग करने के लिए उसकी भर्त्सना भी की। राजा को दया आयी। उसने उस हंस को छोड़ दिया।

हंस इस पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा, मैं एक असाधारण पक्षी हूँ। आपने मुझे छोड़ दिया, इसका मैं प्रत्युपकार करना चाहता हूँ। आप अभी तक अविवाहित हैं। अतएव आप ही के सदृश अलौकिक सुन्दरी दमयन्ती को आप पर अनुरक्त कराने की मैं चेष्टा करूँगा। आपका कल्याण हो। मैं चला। अपने उद्योग की सफलता का सम्वाद सुनाने के लिए शीघ्र ही मैं लौट कर आपके दर्शन करूँगा।

नल से विदा होकर हंस ने विदर्भ देश, आधुनिक बरार को प्रस्थान किया। वहाँ के राजा भीम की कन्या दमयन्ती उस समय त्रिभुवन में एक ही सुन्दरी थी। उसकी रूप-राशि का वर्णन करके हंस ने नल को दमयन्ती पर अनुरक्त किया था। अब उसे दमयन्ती को नल पर अनुरक्त करना था। आकाश-मार्ग से हंस शीघ्र ही विदर्भ-देश की राजधानी कुण्डिनपुर पहुँचा। दमयन्ती उस समय अपने क्रीड़ा स्थल में सखियों के साथ खेल रही थी। हंस मनुष्य की बोली बोलना जानता था। एकान्त में नल के



मे नल के सौंदर्य, बल, वैभव और पराक्रम आदि का वर्णन दमयन्ती को सुनाया

सौन्दर्य, बल, वैभव और पराक्रम आदि का वर्णन दमयन्ती को सुना कर हंस ने उसे नल के प्रेम-पाश में फाँस लिया। यही नहीं, वरन् उसने दमयन्ती से यह वचन तक ले लिया कि चाहे मर जाऊँ, पर नल के अतिरिक्त और किसी से विवाह न करूँगी।

यह सुख-समाचार नल को सुना कर हंस अपने आवास को गया।

इधर नल की चिन्तना ने दमयन्ती को अतिशय सन्तप्त कर दिया। एक दिन विरह-व्यथा से अत्यन्त व्यथित होकर वह मूर्च्छित हो गयी। पिता भीम उसके पास दौड़े आये। कन्या की दशा देख कर उसके सन्ताप का कारण वे ताड़ गये। उन्होंने शीघ्र ही उसका विवाह कर डालना चाहा। स्वयम्वर की तिथि निश्चित हुई।

स्वयम्वर में सम्मिलित होने के लिए देश-देश के नरेश चले। नल ने भी अलका से कुण्डिनपुर के लिए प्रस्थान किया। उधर स्वयम्वर का समाचार और भैमी का सौन्दर्य-वर्णन नारद से सुनकर, उसे पाने की इच्छा से, इन्द्र ने भी देव-लोक से प्रस्थान किया। उसके पीछे यम, वरुण और अग्नि भी चले। मार्ग में उन चारों की भेंट नल से हुई। नल की भुवनातिव्यापिनी सुन्दरता देख कर उन देवताओं के होश उड़ गये। उन्होंने इस बात को निश्चित समझा कि नल के होते दमयन्ती कदापि उनके कण्ठ में वरमाला न पहनायेगी।

अतएव कपट-कौशल की ठहरी। नल की दान-शूरता आदि की प्रशंसा कर के इन्द्र महाराज नल के याचक बने। आपने नल से यह याचना की कि तुम हमारे दूत बन कर दमयन्ती के पास जाओ और हमारी ओर से ऐसी विकालत करो जिससे वह हमीं चारों में से किसी एक को अपना पति बनावे। इस प्रार्थना पर नल को महा दुःख हुआ। उसे क्रोध भी हो आया। उसने इन्द्र के इस कार्य की बड़ी गर्हणा की! अपना सच्चा हाल भी उसने कह सुनाया। संकल्प-द्वारा मुझे ही दमयन्ती अपना पति बना चुकी है, यह भी नल ने स्पष्ट रूप से कह दिया। भीम भूपाल के अन्तःपुर में दूत बन कर जाने की असम्भवता का भी नल ने उल्लेख किया। पर इन्द्र ने एक न मानी। उचित-अनुचित का उस समय उसे कुछ भी ध्यान न रहा। फिर उसने नल की चाटु-कारिता आरम्भ की। विवश होकर नल ने इन्द्रादि देवताओं का दूत बन कर दमयन्ती के पास जाना स्वीकार कर लिया। इन्द्र ने नल को एक ऐसी विद्या सिखला दी जिसके प्रभाव से, इच्छा करने पर, वह और लोगों की दृष्टि से अदृश्य हो सके, पर वह सबको देखता रहे। नल इस तरह इधर दूत बन कर कुण्डिनपुर पहुँचा। उधर पूर्वोक्त चारों दिक्पालों ने पृथक् पृथक् अपनी दूतियाँ भी दमयन्ती के पास; उसे अपनी ओर अनुरक्त करने के लिए, भेजीं। इतने छल-कपट और प्रयत्न को पर्याप्त न समझ कर उन्होंने दमयन्ती के पिता को बहुत-कुछ उत्कोच भी दिया। सब ने अद्भुत-अद्भुत-उपहार राजा भीम को भेजे।

नल ने अपना रथ, अपने अनुचर और अपना असबाब आदि कुण्डिनपुर के बाहर ही छोड़ा। दिक्पालों की स्वार्थपरता और निर्लज्जता को धिक्कारते हुए उसने नगर में प्रवेश किया। जी कड़ा करके वह राज-प्रासाद के पास पहुँचा। धीरे-धीरे वह उसके भीतर घुसा। इन्द्र-दत्त तस्करिणी विद्या के प्रभाव से उसे किसी ने न देखा। घूमते-घामते वह दमयन्ती के महल में प्रविष्ट हुआ। कहीं किसी को अपने स्थिति-स्थान की ओर मुख किये देख, वह डर उठा कि कहीं मैं देख तो नहीं लिया गया। इस प्रकार अन्त:पुर की सैर करते हुए वह दमयन्ती के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसके रूप-माधुर्य की शोभा देखते वह देर तक वहाँ खड़ा रहा। उसने सबको देखा। उसे कोई न देख सका। तदनन्तर समय अनुकूल देख, अङ्गीकृत दूतत्व-निर्वाह के इरादे से, वह प्रकट हो गया। इसके बाद वहाँ जो कुछ हुआ उसके वर्णन में श्रीहर्ष ने अपने नैपध-चरित्र में अपूर्व कवित्व-कौशल दिखाया है। उसी का भावार्थ संक्षेप में आगे दिया जाता है।

पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि नल और दमयन्ती दोनों पहले ही से एक दूसरे पर अनुरक्त थे। तिस पर भी नल ने याचक इन्द्र की याञ्चा को विफल कर देना अपने वंश के विरुद्ध समझा। अतएव उसने दूत बनना स्वीकार कर लिया। नल के चरित्रादर्श, साहस और स्वार्थ-त्याग का यह अद्भुत उदाहरण है। अब इस समय ये दोनों प्रेमी एक दूसरे के सामने हैं। नल से तो कोई बात छिपी नहीं; पर दमयन्ती को

इसका अत्यल्प भी ज्ञान नहीं कि यह कौन है। इससे इस घटना की महत्ता बहुत बढ़ गयी है। इसमें एक अनिर्वचनीय रस उत्पन्न हो गया है। अस्तु—

नल के अकस्मात् प्रकट होने पर दमयन्ती और उसकी सहेलियों ने उसे इस अनिमेष-भाव से देखा मानों वे उसे दृष्टि-द्वारा पी जाना चाहती हैं। नल को इस तरह कुछ देर तक देख चुकने पर किसी-किसी कुमारी ने लाज से सिर नीचा कर लिया और, किसी-किसी ने उसे प्रत्यक्ष मन्मथ समझ कर विस्मय की पराकाष्ठा के पार प्रयाण किया। किसी को इस बात के पूछने का साहस न हुआ कि—आप कौन हैं और कहाँ से आये हैं? नल के अपूर्व रूप और आकस्मिक प्रादुर्भाव ने उन्हें अप्रतिभ कर दिया। उनसे उस समय केवल यही बन पड़ा कि, अभ्युत्थान की वाञ्छा से, अपने-अपने आसनों से वे उठ खड़ी हुई। नल के सन्दर्शन से दमयन्ती को वैसा ही परमानन्द प्राप्त हुआ जैसा कि, वर्षाकाल आने पर, पर्वत से निकली हुई नदी को मेघों के धारासार से प्राप्त होता है।

नल के प्रत्येक अङ्ग की सुन्दरता का मन ही मन अभिनन्दन करके दमयन्ती के हृदय में जिन भावों का उदय हुआ उनका वर्णन करने में केवल महाकवि ही समर्थ हो सकते हैं। दमयन्ती ने देखा कि उसकी सारी सहेलियाँ कुण्ठित-कण्ठ हो रही हैं। उनके मुख-मण्डलों पर आतङ्क छाया हुआ है। अतएव वे दमयन्ती की ओर से उस आगन्तुक पुरुष से कुशल-प्रश्न करने

में असमर्थ है। विवश होकर नम्र मुखी दमयन्ती स्वय ही नल से इस प्रकार गद्गद्-पूर्ण वाणी बोली :—

आचारवेत्ता महात्माओं ने यह नियम कर दिया है कि अतिथि आने पर यदि कुछ न बन पड़े तो प्रेम-पूर्ण अक्षरों की रस-धारा ही को मधुपर्क बनाना चाहिए। अभ्यागत की तृप्ति के लिए अपनी आत्मा को भी तृणवत् समझना चाहिए। और यदि उस समय पाद्य और अर्घ्य के लिए जल न मिल सके तो आनन्दाश्रुओं से ही उस विधि का सम्पादन करना चाहिए। आप का दर्शन होते ही मैं अपना जो आसन छोड़ कर खड़ी हो गयी वह यथार्थ में आप के बैठने योग्य नहीं; तथापि, मेरी प्रार्थना पर बहुत नहीं तो क्षण ही भर के लिए कृपा-पूर्वक आप इसे अलंकृत करें। यदि आप की इच्छा और कहीं जाने की हो तो भी, मेरे अनुरोध से, आप मेरी इस विनती को मान लेने की उदारता दिखावें।

आप के ये पद-द्वय शिरीषकलिकाओं की मृदुता का भी अभिमान चूर्ण करने वाले हैं। यह तो आप बताइए कि आपका निर्दय हृदय कब तक इन्हें इस तरह खड़े रख कर क्लेशित करना चाहता है। बसन्त बीत जाने पर जो दशा उपवनों की होती है वही दशा आप ने किस देश की कर डाली? आप के मुख से उच्चारण किये जाने के कारण कृतार्थ होने वाले आप के नाम के अक्षर सुनने के लिए मैं उत्सुक हो रही हूँ। अपने दर्शनों से सारे संसार को तृप्त करने वाले आप जैसे पीयूषमयूख (चन्द्रमा)

को उत्पन्न करके किस वंश ने समुद्र के साथ स्पर्द्धा करने का यह सर्वथा स्तुत्य और उचित उद्योग किया है।

इस दुष्प्रवेश्य अन्तःपुर में आप के प्रवेश को मैं महासागर को पार कर जाना समझती हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि इतने बड़े साहस का कारण क्या है और इसका फल भी क्या हो सकता है? आप के इस सुरक्षित अन्तःपुर-प्रवेश को मैं अपने नेत्रों के कृतपुण्य का फल समझती हूँ। आप की आकृति सर्वथा भुवन मोहिनी है। द्वारपालों को अन्धा कर डालने की शक्ति भी आप में बड़ी ही अद्भुत है। आप की शरीर कान्ति भी महा अलौकिक है। इससे जान पड़ता है कि आप कोई दिव्य पुरुष, अर्थात् देवता, हैं। मन्मथ आप नहीं हो सकते; क्योंकि वह मूर्ति-हीन है। अश्विनीकुमार भी आप नहीं हो सकते; क्योंकि वे कभी अद्वितीय नहीं देखे गये। यदि आप मनुष्य हैं तो यह पृथ्वी कृतार्थ है। यदि आपने अपने जन्म से नाग-वंश को अलंकृत किया है तो नीचे, अर्थात् पाताल में होने पर भी वह सब लोगों के ऊपर समझा जाने योग्य है। इस भूमण्डल में किस मनुष्य ने इतना अधिक पुण्य किया है कि जिसे कृतकृत्य करने के उद्देश्य से आप अपने पैरों को चलने का कष्ट दे रहे हैं? इस प्रकार के न मालूम कितने सन्देह मेरे चित्त में उत्पन्न हो रहे हैं। अतएव आप अधिक देर तक मुझे सन्देह-सागर में न डुबोइए। बतला दीजिए कि किस धन्य के आप अतिथि हैं। आपके सुन्दर रूप का दर्शन करके मेरी दृष्टि ने तो अपने जन्म का फल पा लिया।

यदि आप अपने मुख से अब कुछ कहने की कृपा करें तो मेरे श्रवणों को भी सुधा-सार के आस्वादन का आनन्द मिल जाय"।

दमयन्ती के मुख से इस प्रकार मञ्जुल तथा मीठी वाणी सुनने से नल की विचित्र गति हो गयी। स्तुति ऐसी चीज़ है जो शत्रु के मुंह से भी मीठी मालूम होती है; फिर प्राणोपम प्रिया के मुख से उसके मिठास का कहना ही क्या है।

नल ने स्वयं दमयन्ती के आसन पर बैठना तो उचित न समझा; पर, दमयन्ती की प्रार्थना पर, उसकी सखी के आसन पर वह बैठ गया। इस समय नल के हृद्गत धैर्य और मनोभाव में युद्ध ठन गया। जीत धैर्य ही की हुई। मनोभाव ने हार खाई। उसकी एक न चली। विकारों की उत्पादक प्रबल सामग्री के उपस्थित होने पर भी यदि महात्माओं का मन कलुषित हो जाय तो फिर वे महात्मा ही कैसे?

दमयन्ती ने नल से जो प्रश्न किये उनमें से एक को छोड़ कर और सब प्रश्न नल हज़म कर गये। आपने अपनी कथा का आरम्भ इस प्रकार किया:—

मैं दिशाओं के अधिपतियों की सभा से तुम्हारे ही पास अतिथि हो कर आया हूँ। साथ ही अपने प्रभुओं के सन्देश को बड़े आदर के साथ अपने हृदय में प्राणों की तरह धारण करके लाया हूँ। मेरा आतिथ्य-सत्कार हो चुका। बस, अब और अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं। बैठ क्यों नहीं जातों। आसन क्यों छोड़ दिया? दूत बन कर मैं जिस

काम के लिए आया हूँ उसे यदि तुम सफल कर दोगी तो मैं उसी को अपना बहुत बड़ा आतिथ्य समझूँगा। हे कल्याणि! चित्त तो तुम्हारा प्रसन्न है? शरीर तो तुम्हारा सुखी है? विलम्ब करने का यह समय नहीं, इससे जो कुछ मैं निवेदन करने जाता हूँ उसे कृपा करके सुनो। मेरा निवेदन यह है:—

जब से तुम्हारी कुमारावस्था का आरम्भ हुआ तभी से तुम्हारे गुणों ने इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर के हृदय पर अधिकार कर लिया है। तुम्हारे शैशव और यौवन की सन्धि से सम्बन्ध रखनेवाली बातों का विचार करके इन दिक्पालों का चित्त प्रतिदिन अधिकाधिक खिन्न हो रहा है। दो राजाओं के राज्य में जो दशा प्रजा की होती है वही दशा इस समय इन देवताओं की हो रही है।

मैं तुमसे इन्द्र का क्या हाल बयान करूँ। सूर्य जिस समय पूर्व दिशा में उदित होता है उस समय उसका बिम्ब वैसाही अरुण होता है जैसा कि चन्द्रमा का। तुम्हारे वियोग में महेन्द्र सूर्य को भी सदृशता के कारण, चन्द्रमा समझ कर अत्यन्त क्रोध-पूर्ण दृष्टि से देखता है। किसका अपराध और किस पर क्रोध! परन्तु वह बेचारा करे क्या? वह इस समय नितान्त विवेक-हीन हो रहा है। केवल तीन नेत्र धारी ने मनोज महोदय के साथ जो सुलूक किया था उसी को वह अब तक नहीं सँभाल सका।

मेरी समझ में नहीं आता कि यदि अब सहस्रनेत्रधारी उस पर रुष्ट हुआ तो उस बेचारे की क्या दशा होगी? मनसिज के

तो शरीरकृत अपराधों से शची-पति सन्तप्त हो रहा है, कोकिल का तो वचनकृत अपराध भी उसे सहन नहीं होता। इस डर से कि कहीं पिक का शब्द कान में न पड़ जाय वह अपने नन्दन-वन में जाकर बैठने का साहस भी नहीं कर सकता। और कहाँ तक कहूँ, शङ्कर के जटाजूट वाले बालचन्द्रमा को अपना अपकार-कर्ता समझ कर महादेव का पूजन तक करना उसने छोड़ दिया है। तुम्हारे वियोग में उसके धैर्य का समूल उन्मूलन हो गया है।

कल्प वृक्ष संसार के दरिद्र-हरण की सामर्थ्य रखते हैं। परन्तु इस समय वे स्वयं ही महा दरिद्र हो रहे हैं। इन्द्र का शरीर-सन्ताप दूर करने के लिए उनके पत्तों की शय्यायें बना डाली गयी हैं। अतएव वे सब बे-पत्ते के दारिद्र दीन-से खड़े हुए हैं। तुम कदाचित् यह शङ्का करो कि क्या अमरपुर में कोई ऐसा पण्डित नहीं, जो अपने सदुपदेश से इन्द्र को धैर्य प्रदान करे। शङ्का तुम्हारी निर्मूल नहीं। परन्तु उपदेश सुने कौन ? रति-पति के धन्वा की अविरत टङ्कार ने इन्द्र को दोनों कानों से बहरा कर डाला है। अतएव महेन्द्र की मोह-निद्रा को दूर करने वाले सुर-गुरु बृहस्पति की धैर्य-विधायक वाणी सर्वथा व्यर्थ हो रही है।

अष्टमूर्ति शङ्कर का जो देदीप्यमान शरीर है और याजक जिसकी नित्य उपासना करते हैं उस अग्नि का भी बुरा हाल है। कुसुम शायक ने उसे भी तुम्हारा दास बनाने की आज्ञा दे दी है। दूसरों को जलाते समय अग्नि अब तक यह न जानता था कि उन्हें कितना ताप होता है—उन्हें कितनी जलन होती है।

परन्तु तुम्हारी सहायता से अग्नि को जला कर इस समय अनङ्ग उसे यहाँ तक विनीत और विनम्र बना रहा है कि भविष्यत् में दूसरों को सन्ताप देने का उसे कदापि साहस न होगा। क्योंकि, अब उसे जलने का दुःख अच्छी तरह ज्ञात हो गया है। शङ्कर के तीसरे नेत्र में वास करने वाले पावक ने मनसिज को एक बार जला कर भस्म कर दिया था। इस बात को तुमने भी पुराणों में सुना होगा। सो वह पुराना बदला लेने के लिए इस समय मनोज ने तुम्हारे नेत्रों का सहारा लिया है। उन्हीं के भीतर सुरक्षित बैठा हुआ वह अग्नि को जला रहा है। उसका यह कठोर कार्य बहुत दिन से जारी है। तथापि वह यही समझ रहा है कि अभी तक उस वैर-भाव का पर्याप्त बदला नहीं हुआ। तुम्हारे कारण कुसुमायुध के शरों से अग्नि यहाँ तक पीड़ित हो गया है कि अपने भक्तों के द्वारा चढ़ाये गये कुसुमों से भी डर कर वह कोसों दूर भागता है।

सरोरुहों का सखा सूर्य, जिससे पुत्रवान् है और चन्दन के सुवास से सुगन्धित दक्षिण-दिशा, जिसकी प्रियतमा है, उस वैवस्वत यम ने भी तुम्हारे निमित्त अपने सम्पूर्ण धैर्य की आहुति दे डाली है। वह भी इस समय बड़ी ही विषमावस्था को प्राप्त है। शीतोपचार के लिए मलयाचल से लाये गये कोमल पल्लव उसके शरीर-स्पर्श से यद्यपि बेतरह झुलस जाते हैं, तथापि मलय इस आपत्तिकाल में भी अपने प्रभु यम की सेवा नहीं छोड़ता। कारण यह है कि वह उसी की दिशा का—उसी के राज्य का—

वासी है। अतएव यम के शरीर के साथ मलयाद्रि भी अपने नवल पल्लव और चन्दनादि के जलाने का सन्ताप सहन कर रहा है।

रहा वरुण, सो उसकी भी दशा अच्छी नहीं। महासागर युगानुयुग से बड़वाग्नि की ज्वाला सहन करता चला आ रहा है! वह उसे विशेष दाहकारक नहीं जान पड़ती, परन्तु अपने ही अधिपति वरुण का स्मराग्नि-सन्तप्त शरीर के जल के भीतर धारण करने में वह इस समय असमर्थ हो रहा है!

ये चारों देवता तुम्हारे नगर के बाहर पास ही ठहरे हुए हैं। उन्हीं की आज्ञा से मैं तुम्हारी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। जो कुछ मैंने तुमसे निवेदन किया वह उन्हीं का सन्देश है। अब कृपा करके बतलाओ कि उन्हें अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए कब तक ठहरना पड़ेगा। उनके जीवन संशयापन्न हैं। अतएव जहाँ तक हो सके तुम्हें शीघ्रता करनी चाहिए। तुम प्रति दिन इन देवताओं की पूजा कमल के फूलों से करती तो हो, परन्तु इस तरह की पूजा ये नहीं चाहते। यह इनको प्रीतिकर नहीं। तुम्हें प्रसन्न करने के लिए तो ये स्वयं ही अपना मस्तक तुम्हारे सामने झुका रहे हैं। अतएव अपने चरण-कमलों से तुम इनकी पूजा करो, प्राकृतिक कमल-फूलों से नहीं। अब क्या आज्ञा है?

प्रश्न

१—कमायूँ का प्राचीन नाम क्या था?

२—राजा नल द्वारा पकड़े जाने पर हंस दुःखी क्यों हुआ? नल ने उसे छोड़ क्यों दिया?

३—नल से छुटकारा पाकर हंसने उनका क्या प्रत्युपकार करने का वचन दिया ?

४—हंस ने दमयन्ती से क्या वचन ले लिया था ?

५—नल ने इन्द्र के कार्य की गर्हणा क्यों की ?

६—कुण्डिनपुर में प्रवेश करते समय नल को किसी ने क्यों नहीं देखा ?

७—इन्द्र किसी का सदुपदेश क्यों नहीं सुन पाता था ?

८—दमयन्ती पर कौन-कौन से देवता आसक्त थे ?

अभ्यास

१—निम्नलिखित शब्दों के पर्यायवाची शब्द लिखो :—

हंस, अग्नि, देवता, सूर्य ।

२—निम्नलिखित वाक्यों में प्रयोग करो :—

धैर्य-विधायक, उन्मूलन, दुष्प्रवेश्य, मधुपर्क ।

३—दूसरे और तीसरे प्रघट्टक में उन शब्दों को चुनो, जिनमें उपसर्ग या प्रत्यय लगे हैं ।

४—(चौथे प्रघट्टक से) शब्द-निरुक्त करो :—

से, होकर, वहाँ, किन्तु, किसी, न, करूँगी ।

५—पाठ का सारांश केवल १० पंक्तियों में लिखो ।

आदेश

१—" द्विवेदी जी आधुनिक गद्य-युग के प्रवर्तक थे "—इसे अपने अध्यापक से समझो ।

२२—चन्द्रशेखर वेंकट रमन

[श्री व्यथित हृदय लिखित, चन्द्रशेखर वेंकट रमन की जीवनी इन प्रश्नों को ध्यान में रखकर पढ़ो।

१—रमन महोदय आज सम्पूर्ण संसार के गौरव की वस्तु क्यों समझे जाते हैं।

२—भौतिक विज्ञान का क्षेत्र रमन महोदय की उन्नति के लिए अधिक उपयुक्त क्यों था ?]

आजकल के वैज्ञानिक जगत में रमन महोदय का नाम विशेष सम्मान और गर्व के साथ लिया जाता है। रमन महोदय हैं भी संसार के गर्व की वस्तु। उन्होंने अपने वैज्ञानिक आविष्कार से संसार को जो गौरव प्रदान किया है, उसे संसार कदाचित् कभी भी भूल न सकेगा। संसार चाहे भूल भी जाय, पर भारतवर्ष तो उसे अपने हृदय-पटल पर अंकित रक्खेगा। रमन महोदय भारतवर्ष के प्राण हैं। इन्होंने संसार के इतिहास में भारत के गौरव और सम्मान की अभिवृद्धि की है। इनके वैज्ञानिक अध्ययन और अनुभवों पर संसार में बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने आश्चर्य प्रकट किया है। इन्होंने अपने वैज्ञानिक अध्ययन और महत्वपूर्ण अनुसन्धानों की शक्ति से १९३० ई० में वह नोबुल पुरस्कार प्राप्त किया जो संसार का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण पुरस्कार समझा जाता है। धन्य है भारतवर्ष, जिसकी गोद में आज भी रमन ऐसे सपूत विद्यमान हैं।



चन्द्रशेखर वेंकट रमन



श्री चन्द्रशेखर रमन का जन्म दक्षिण भारत के त्रिचनापल्ली नामक नगर में १८८८ ई० की सातवीं नवम्बर को हुआ था। इनके पिता का नाम श्री चन्द्रशेखर अय्यर था। अय्यर महोदय एक साधारण स्थिति के व्यक्ति थे। पहले वे एक साधारण स्कूल के शिक्षक थे। फिर उन्नति करते करते बाल्टेयर कालेज में विज्ञान के अध्यापक हो गये थे। शिक्षा की ओर उनका विशेष ध्यान था। वे रमन महोदय को अच्छी से अच्छी शिक्षा दिलाने के इच्छुक थे। रमन महोदय के हृदय में बाल्यावस्था ही में विज्ञान के प्रति प्रेम का अंकुर उत्पन्न हो गया था। ऐसा होना स्वाभाविक भी था क्योंकि इनके पिता भौतिक विज्ञान के अध्यापक थे। स्कूल और कालेज के जीवन में यह एक प्रतिभाशाली छात्र समझे जाते थे। इनकी बुद्धि और प्रतिभा को देख कर कभी-कभी इनके अध्यापकों को भी चकित हो जाना पड़ता था। बहुत छोटी अवस्था में ही इन्होंने इन्टरमीडियट की परीक्षा पास की थी। बी० ए० की परीक्षा में ये प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये थे। भौतिक विज्ञान में विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण होने के उपलक्ष में इन्होंने एक पदक भी प्राप्त किया।

रमन महोदय के अध्ययन का मुख्य विषय था भौतिक विज्ञान। एम० ए० की परीक्षा भी इन्होंने भौतिक विज्ञान लेकर ही उत्तीर्ण की थी। एम० ए० की परीक्षा में रमन महोदय मद्रास विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी में सर्व प्रथम उत्तीर्ण हुए थे। एम० ए० का अध्ययन करते हुये एक बार रमन महोदय ने

चमत्कारिक ढंग से अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया था। एक बार उनके एक सहपाठी ने उनके सामने भौतिक विज्ञान का एक ऐसा प्रश्न रक्खा, जिसे अध्यापक महोदय भी हल नहीं कर सकते थे। रमन ने उसकी विस्तृत व्याख्या की और उस पर एक महत्व-पूर्ण निबन्ध भी लिखा। उनका वह निबन्ध विलायत के एक पत्र में प्रकाशित हुआ था। उनकी इन्हीं योग्यताओं को देखकर सरकार उन्हें छात्रवृत्ति देकर अध्ययन के लिये विलायत भेजना चाहती थी, किन्तु अपने स्वास्थ्य के कारण वे विलायत न जा सके। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् वे सरकारी आय-व्यय-विभाग में स्थान प्राप्त करने के उद्देश्य से उसकी प्रतियोगिता की परीक्षा में सम्मि-लित हुये थे। उसमें उनका सर्व प्रथम स्थान था, फल-स्वरूप वे कलकत्ता में डिप्टी-एकाउण्टेण्ट-जनरल के पद पर नियुक्त कर दिये गये।

किन्तु रमन महोदय एक सरकारी नौकर के ही रूप में अपना जीवन व्यतीत करना नहीं चाहते थे। वे अपनी प्रतिभा को जानते थे। नौकरी के समय भी वे बराबर अपने वैज्ञानिक ज्ञान की उन्नति के लिये प्रयत्न करते रहे। उन दिनों कलकत्ते में 'इण्डियन एसोसियेशन' नाम की एक वैज्ञानिक संस्था थी। रमन महोदय इस संस्था की बैठकों में बराबर भाग लिया करते थे। और उसकी सहायता से वैज्ञानिक प्रयोग भी किया करते थे। कुछ दिनों के पश्चात् वे कलकत्ते से रंगून के लिए और फिर वहाँ से नागपुर के लिये बदल दिये गये। किन्तु थोड़े ही दिनों में

वे पुनः कलकत्ता आ गये। इन्हीं दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के अध्यापक का एक पद रिक्त हुआ। विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर सर आशुतोष मुकर्जी रमन महोदय और उनके वैज्ञानिक ज्ञान से परिचित थे। उन्होंने रमन महोदय से उस जगह के लिये प्रार्थना की। यद्यपि आर्थिक दृष्टि से सरकारी नौकरी रमन महोदय के लिये अधिक लाभदायक थी, किन्तु फिर भी उनके विज्ञान-प्रेम ने उन्हें सरकारी नौकरी छोड़ देने के लिये विवश किया और वे कलकत्ता विश्व-विद्यालय में भौतिक विज्ञान के अध्यापक के पद पर नियुक्त हो गये।

यह क्षेत्र रमन महोदय की उन्नति के लिए अधिक उपयुक्त था। उनके हृदय में जो प्रवृत्तियाँ थीं, उनके विकसित होने के साधन यहाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुये। इस पद पर रह कर रमन महोदय ने अधिक ख्याति और सम्मान प्राप्त किया। साथ-ही-साथ कलकत्ता-विश्वविद्यालय को भी इन्होंने अधिक गौरवान्वित किया। उनके अध्यापन काल में भौतिक विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिये दूसरे प्रान्तों के विद्यार्थी कलकत्ता-विश्वविद्यालय में आते थे। सन् १६२१ ई० में वे इंगलैंड गये। इंगलैण्ड में ब्रिटिश साम्राज्य के विश्वविद्यालयों की एक काँग्रेस हुई थी। रमन महोदय कलकत्ता-विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में इस काँग्रेस में सम्मिलित हुये थे। काँग्रेस में उन्होंने जो व्याख्यान दिये थे, वे बहुत ही महत्वपूर्ण और वैज्ञानिक जगत को आश्चर्य में डाल देने वाले

थे। रमन महोदय जब वहाँ से लौट कर आये, तब कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डाक्टर-आफ् साइन्स' की उपाधि दी। सन् १६२४ ई० में उन्हें कनाडा में होने वाली वैज्ञानिकों की एक सभा का निमंत्रण प्राप्त हुआ और वे पुनः विदेश चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने भारतीय संगीत और वाद्यों की ध्वनि-सार्थकता प्रमाणित की। इसके पूर्व पश्चिमी विद्वान् भारतीय संगीत और वाद्यों की ध्वनि को हेय समझते थे। इसके साथ-ही-साथ रमन महोदय पश्चिम में अनेक वैज्ञानिकों से मिले और उनकी प्रयोग-शालाओं का निरीक्षण किया। अपनी इस पश्चिमी यात्रा में उन्होंने अमरीका, इंगलैंड, जर्मनी, नार्वे, रूस और इटली आदि देशों का परिभ्रमण किया और वहाँ के वैज्ञानिकों से मिल कर महत्वपूर्ण अनुभव प्राप्त किया।

पाश्चात्य देशों का परिभ्रमण करने के पश्चात् जब रमन महोदय भारत लौट कर आये, तब एकान्त चित्त से आविष्कार की साधना में संलग्न हो गये। दो-तीन वर्ष तक कठिन साधना करने के पश्चात् उन्होंने एक ऐसा आविष्कार किया, जिसने विज्ञान-जगत में उन्हें सदा के लिये अमर बना दिया है। उनका वह अनुसन्धान प्रकाश बिखरने के सम्बन्ध में है, और सारे वैज्ञानिक-जगत में 'रमन असर' के नाम से विख्यात है। इस आविष्कार के पश्चात् जगत के अधिकांश देशों ने उन्हें अपने यहाँ निमंत्रित किया, और उक्त आविष्कार के सम्बन्ध में उनसे व्याख्यान दिलाये। सन् १६३० ई० में इसी आविष्कार के फल

स्वरूप, उन्हें संसार का सबसे बड़ा पुरस्कार, जिसे नोबुल पुरस्कार कहते हैं, प्राप्त हुआ। जिस समय इसकी घोषणा समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई थी, उस समय सारे भारत का हृदय आनन्द और उत्साह से आन्दोलित हो उठा था। रमन महोदय ने स्वयं नार्वे जाकर वहाँ के सम्राट् के हाथों से एक लाख तीस हजार रुपए का यह सम्माननीय पुरस्कार ग्रहण किया था।

भारतवर्ष भी अपने इस महान् पुरुष का सम्मान करने में संसार से पीछे न रहा। जहाँ विदेशी विश्वविद्यालयों ने उन्हें अनेक उपाधियों से सम्मानित किया, वहाँ भारत की सरकार ने भी उन्हें सर की उपाधि प्रदान की। १९२९ ई० में जो अखिल-भारतीय-विज्ञान-परिषद् हुई थी, रमन महोदय ही उसके सभापति निर्वाचित हुये थे। बंगलौर के "इण्डियन-इन्स्टीट्यूट-आफ्-साइन्स" में उन्हें डाइरेक्टर का पद भी प्राप्त हुआ। वे पहले भारतीय थे, जिनकी इस पद पर नियुक्ति हुई थी। इस समय रमन महोदय बंगलौर के उक्त इंस्टीट्यूट में ही हैं। ईश्वर भारत के इस महान् पुरुष को दीर्घजीवी करें।

प्रश्न

१—नोबुल पुरस्कार से तुम क्या समझते हो? चन्द्रशेखर रमन को यह पुरस्कार किस सम्बन्ध में मिला था?

२—भारत सरकार ने रमन महोदय को किस प्रकार सम्मानित किया?

३—रमन महोदय आज सम्पूर्ण संसार के गौरव की वस्तु क्यों समझे जाते हैं?

४—भौतिक विज्ञान का क्षेत्र रमन महोदय की उन्नति के लिए अधिक उपयुक्त क्यों था ?

५—भारतवर्ष ने रमन महोदय का क्या सम्मान किया ?

अभ्यास

१—नीचे लिखे हुए शब्दों का अपने वाक्यों में प्रयोग करो—

निरीक्षण, गौरवान्वित, अनुसन्धान, प्रतियोगिता ।

२—सामने दिए हुए शब्दों में से शब्द छाँट कर अधोलिखित वाक्यों को पूरा करो—

(१) रमन ने अपने······ द्वारा सारे संसार में ख्याति पाई ।
(परिश्रम, आविष्कार, अध्ययन, प्रतिभा)

(२) भारत सरकार ने रमन महोदय को 'सर' की······देकर सम्मानित किया । (स्थिति, नौकरी, उपाधि) ।

३—निम्नलिखित वाक्यों की खाली जगहों में संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण भरो—

(१) कालिज में रमन······ छात्र समझे जाते थे ।

(२)······पिता साधारण स्थिति के व्यक्ति थे ।

(३) रमन के······में प्रारम्भ से ही······के प्रति प्रेम था ।

४—निम्नलिखित उत्तरों के प्रश्न लिखो—

(१) रमन को अपने आविष्कार के फलस्वरूप 'नोबुल पुरस्कार' मिला ।

(२) रमन अपनी प्रतिभा और वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण ही आज संसार के गौरव की वस्तु बने हुए हैं।

५—वाक्य विश्लेषण करो—

इन्होंने अपने·········प्राप्त किया।

आदेश

समस्तपद	विग्रह	समास
आय व्यय-विभाग	आय और व्यय	द्वन्द्व समास
	आय-व्यय का विभाग	तत्पुरुष "
ध्वनि-सार्थकता	ध्वनि की सार्थकता	" "
भारत-सरकार	भारत की सरकार	" "

१—ऊपर के उदाहरणों में देखो, सामासिक शब्दों के बीच में छोटा डैश—सामासिक चिह्न-दिया गया है जिससे समास की पहचान हो जाय।

२—स्मरण रक्खो कि सामासिक शब्दों के अन्तिम शब्द में आवश्यकतानुसार विभक्ति लगाई जाती है। जैसे भारत-सरकार ने रमन को सर की उपाधि दी।

३—सामासिक शब्दों के लिंग की पहचान प्रायः अन्तिम शब्द से की जाती है। 'भारत' पुं० लिं० है 'सरकार' स्त्री० लि० इसलिए इसी अन्तिम शब्द के लिंग के अनुसार समस्त पद स्त्री लिंग है।

४—अन्तिम पद का समास ही मुख्य माना जाता है। आय-व्यय-विभाग में तत्पुरुष मुख्य है। कुछ और सामासिक शब्द छाँट कर उनमें उपर्युक्त नियम देखो।

—:o:—

२३—गोपाल श्रीकृष्ण

[रचयिता सूरदासजी (जन्म लगभग सं० १५४०, गोलोकवास लगभग सं० १६२०) कृष्ण-भक्ति-शाखा के कवियों में सर्वोत्कृष्ट हैं। तुलसीदासजी के रामचरित-मानस की भाँति इनका लिखा हुआ 'सूरसागर' भी बहुत ही सर्व प्रिय है। इसमें कुल सवा लाख पद, भजन या गीत हैं। बाल कृष्ण और वियोग-शृङ्गार सम्बन्धिनी रचनाएँ विशेष महत्व पूर्ण हैं। इस पाठ में कृष्ण के गोचारण सम्बन्धी पदों को पढ़ो]

[१]

मैं दुहिहौं मोहिं दुहन सिखावहु।
कैसे धार दूध की बाजत सोइ बिधि तुम मोहिं बतावहु॥
कैसे दुहत दोहनी घुटुवन कैसे बछरा थनहिं लगावहु।
कैसे लै नोई पग बाँधत कैसे पगैया लै अटकावहु॥
निकट भई अब साँझ कन्हैया गाइन पै कहुँ चोट लगावहु।
'सूर'स्याम सों कहत ग्वाल सब धेनु दुहन प्रातहिं उठिआवहु॥

[२]

तनक तनक से दोहिनी दै दै री मैया।
तात दुहन सीखन कह्यो मोहिं धौरी गैया॥
अटपटे आसन बैठि कै गोथन कर लीनो।
धार अनत ही देख कै ब्रजपति हँसि दीनो॥
घर घर ते आई सबै देखन ब्रजनारी।
चितै चोरि चित हरि लियो हँसि गोप बिहारी॥
बिप्र बोलि आसन दियो करि बेद उचारी।
'सूर' स्याम सुरभी दुही संतन हितकारी॥

[३]

बछरा चारन चले गोपाल।
सुबल सुदामा अरु श्री दामा संग लिए सब ग्वाल॥
दनुज एक तहँ आई पहुँचेउ धरे बच्छ को रूप।
तरन चहत ब्रजपति के हाथन मूढ़ परो भवकूप॥
हरि हलधर दिसि चितइ कहत तुम जानत हो यहि बीर।
कह्यो आहि दानौ यहि मारो धारे बच्छ सरीर॥
तब हरि सींग गह्यो यक करसों यक करसों गहे पाय।
थोरे ही बल सों छिन भीतर दीनों ताहि गिराय॥
गिरत धरनि पर प्रान गए, चलि फिरि नहिं आई साँस।
'सूरदास' ग्वालन संग मिलि हरि लागे करन बिलास॥

[४]

छाक लेन जे ग्वाल पठाए ।
तिनसों बूझत महरि जसोदा छाँड़ि कन्हैयहि आए ॥
हमहिं पठाय दिये नँदनंदन भूखे अति अकुलाए ।
धेनु चरावत हैं बृन्दावन हम यहि कारन आए ॥
यह कहि ग्वाल गए अपने गृह बन की खबर सुनाए ।
'सूर' स्याम बलराम प्रात हीं अघजेंवत उठि धाए ॥

[५]

जोरति छाँक प्रेम सों मैया ।
ग्वालन बोलि लए अधजेंवत उठि दौरे दोउ भैया ॥
तबहीं ते भोजन नहिं कीनो चाहत दियो पठाई ।
भूखे भए आजु दोउ भैया आपहि बोलि मँगाई ॥
सद माखन साजो दधि मीठो मधु मेवा पकवान ।
'सूर'स्याम को छाक पठावति कहति ग्वाल सों जान ॥

[६]

आई छाक बुलाए स्याम ।
यह सुनि सखा सबै जुरि आये सुबल सुदामा अरु श्रीदाम ॥
कमलपत्र दोना पलास के सब आगे धरि परसत जात ।
ग्वाल मंडली मध्य स्यामघन सब मिलि भोजन रुचिकर खात ॥
ऐसी भूख माँझ इह भोजन पठै दियो करि जसुमति मात ।
'सूर' स्याम अपनो नहिं जेंवत ग्वालन कर तें लै-लै खात ।

[७]

सखन संग हरि जेंवत छाक ।
प्रेम सहित मैया दै पठये सबै बनाए हैं एक ताक ॥
सुबल सुदाम श्रीदामा संग सब मिलि भोजन रुचि सों खात ।
ग्वालन-कर तें कौर छुड़ावत मुख लै मेलि सराहत जात ॥
जो सुख कान्ह करत बृन्दावन सो सुख नहीं लोकहूँ सात ।
'सूर' स्याम भगतन-बस ऐसे ब्रजहि कहावत हैं नँदलाल ॥

[८]

जेंवत छाक गाय बिसराई ।
सखा सुदामा कहत सबनि सों छाकहिं में तुम रहे भुलाई ॥
धेनु नहीं देखियत कहुँ नियरे भोजन ही में साँझ लगाई ।
सुरभि काज जहँ-तहँ उठि धाये आपु तहाँ उठि चले कन्हाई ॥
ल्याये ग्वाल घेरि गो गोसुत देखि स्याम मन हरष बढ़ाई ।
'सूरदास' प्रभु कहत चलौ घर बन में आजु अबार कराई ॥

[९]

ब्रजबासी कोउ पटतर नाहिं ।
ब्रह्म सनक सिव ध्यान न पावत इनकी जूठनि लै-लै खाहिं ॥
धन्य नंद धनि जननि जसोदा धन्य जहाँ अवतार कन्हाई ।
धन्य-धन्य बृन्दावन के तरु जहँ बिहरत त्रिभुवन के राई ॥
हलधर कह्यो छाँक जेंवत संग मीठो लगत सराहत जाइ ।
'सूरदास' प्रभु बिस्वंभर हैं ते ग्वालिन के कौर अघाइ ॥

प्रश्न

१—श्रीकृष्ण किस बात के लिए आग्रह कर रहे थे ?

२—श्रीकृष्ण से ग्वालों ने क्या कहा ?

३—'व्रजपति' को किस बात पर हँसी आ गई ?

४—जो ग्वाले छाक लेने गये थे उनसे यशोदा ने क्या पूछा ?

५—ग्वालों ने क्या उत्तर दिया ?

६—'विश्वम्भर' शब्द के प्रयोग में क्या लालित्य है ?

अभ्यास

१—श्रीकृष्ण की बाल-लीला का वर्णन अपने शब्दों में करो।

२—तुम्हें कौन सा पद अधिक रुचता है, कारण सहित बताओ।

३—बच्छ, छिन, घरनि, कागन के शुद्ध रूप लिखो।

४—इन पदों में से रूपक अलंकार छाँटो।

पाठ की सहायता

छाक = चरवाहों का दोपहर का भोजन।

विश्वम्भर = विश्व का भरण पोषण करने वाला, ईश्वर।

—:o:—

२४—यही मेरी मातृभूमि है

'सेवासदन', 'रंगभूमि' आदि के प्रणेता श्रीप्रेमचंद हिंदी के सर्वश्रेष्ठ
यासिक हैं। हिंदी-साहित्य की काया-पलट इन्हीं से प्रारंभ हुई।



जैसे सुन्दर इन्होंने उपन्यास लिखे, वैसी ही, कदाचित् उनसे भी बढ़ कर, इन्होंने छोटी छोटी कहानियाँ लिखीं। राष्ट्रीय दृष्टि से जितना अधिक महत्व इन छोटी-छोटी कहानियों का है, उतना उपन्यासों का नहीं। अनेकों ने इनकी कहानियों को पढ़ने की इच्छा से हिंदी पढ़ना सीखा, और सीख रहे हैं। इनकी कहानियों के पात्र सजीव हैं, और
न के प्रत्येक क्षेत्र से लिए गए हैं। इनका चित्रण इतना प्रौढ़ हुआ है
थम परिचय में ही यह अपनी अमर छाप हृदय पर छोड़ जाते हैं।
माविकता इनके गद्य का प्रधान आभूषण है। भाषा इतनी सरल है
अपढ भी समझ लेता है।

भारतीय संस्कृति का सदैव ख़याल रक्खा गया है।

'यही मेरी मातृभूमि है' कहानी में लेखक ने देश-प्रेम का आदर्श
स्थित किया है।

भारतीय और योरपीय संस्कृतियों में क्या अन्तर है, और किससे मानव-जाति का हित-साधन हो सकता है ?

इस प्रश्न को स्मरण रखकर इस कथानक को पढ़ो ।]

(१)

आज पूरे ६० वर्ष के बाद मुझे मातृभूमि, प्यारी मातृभूमि, के दर्शन प्राप्त हुए हैं । जिस समय मैं अपने प्यारे देश से विदा हुआ था, और भाग्य मुझे पश्चिम की ओर ले चला था, उस समय मैं पूर्ण युवा था । मेरी नसों में नवीन रक्त संचालित हो रहा था । हृदय उमंगों और बड़ी-बड़ी आशाओं से भरा हुआ था । मुझे अपने प्यारे भारतवर्ष से किसी अत्याचारी के अत्याचार या न्याय के बलवान् हाथों ने नहीं जुदा किया था । अत्याचारी के अत्याचार और क़ानून की कठोरताएँ मुझसे जो चाहें, करा सकती हैं, मगर मेरी प्यारी मातृभूमि मुझसे नहीं छुड़ा सकतीं । वे मेरी उच्च अभिलाषाएँ और बड़े-बड़े ऊँचे विचार ही थे, जिन्होंने मुझे देश-निकाला दिया था ।

मैंने अमेरिका जाकर वहाँ ख़ूब व्यापार किया, और व्यापार से धन भी ख़ूब पैदा किया, तथा धन से आनंद भी ख़ूब मनमाने लूटे । सौभाग्य से पत्नी भी ऐसी मिली, जो गुणों में अपना सानी आप ही थी । उसके हृदय में ऐसे विचार की गुंजायश भी न थी, जिसका संबंध मुझसे न हो । मैं उस पर तन-मन से आसक्त था, और वह मेरी सर्वस्व थी । मेरे पाँच पुत्र थे, जो सुंदर, हृष्ट-पुष्ट

और ईमानदार थे। उन्होंने व्यापार को और भी चमका दिया था। मेरे भोले-भाले नन्हे-नन्हे पौत्र गोद में बैठे हुए थे, जब कि मैंने प्यारी मातृभूमि के अंतिम दर्शन करके पैर उठाए। मैंने अनंत धन प्रियतमा पत्नी सपूत बेटे और प्यारे-प्यारे जिगर के टुकड़े नन्हे-नन्हे बच्चे आदि अमूल्य पदार्थ केवल इसीलिये परित्याग कर दिए कि प्यारी भारत-जननी के अंतिम दर्शन कर लूँ। मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ; दस वर्ष बाद पूरे सौ वर्ष का हो जाऊँगा। अब मेरे हृदय में केवल एक ही अभिलाषा बाक़ी है कि मैं अपनी मातृभूमि का रजःकण बनूँ।

यह अभिलाषा कुछ आज ही मेरे मन में उत्पन्न नहीं हुई। बल्कि उस समय भी थी, जब मेरी प्यारी पत्नी अपनी मधुर बातों से मेरे हृदय को प्रफुल्लित किया करती थी, और जब कि मेरे युवा पुत्र प्रातःकाल आकर अपने वृद्ध पिता को सभक्ति प्रणाम करते, उस समय भी मेरे हृदय में एक काँटा-सा खटकता रहता था कि मैं अपनी मातृभूमि से अलग हूँ। यह देश मेरा देश नहीं है, और मैं इस देश का नहीं हूँ।

मेरे धन था, पत्नी थी, लड़के थे, और जायदाद थी; मगर न मालूम क्यों, मुझे रह-रहकर मातृभूमि के टूटे-फूटे झोपड़े, चार-छः बीघे मौरूसी जमीन और बालपन के लँगोटिए यारों की याद अक्सर सता जाया करती। प्रायः अपार प्रसन्नता और आनंदोत्सवों के अवसर पर भी यह विचार हृदय में चुटकी लिया करता था कि "यदि मैं अपने देश में होता......!"

(२)

जिस समय मैं बंबई में जहाज़ से उतरा, मैंने पहले काले-काले कोट-पतलून पहने, टूटी-फूटी अँगरेज़ी बोलते हुए मल्लाह देखे। फिर अँगरेज़ी दूकानें, ट्राम और मोटरगाड़ियाँ दीख पड़ीं। इसके बाद रबर-टायरवाली गाड़ियों और मुँह में चुरट दाबे हुए आदमियों से मुठभेड़ हुई। फिर रेल का विक्टोरिया-टर्मिनस-स्टेशन देखा। बाद मैं रेल पर सवार होकर हरी-हरी पहाड़ियों के मध्य में स्थित अपने गाँव को चल दिया। उस समय मेरी आँखों में आँसू भर आए, और मैं ख़ूब रोया, क्योंकि यह मेरा देश न था। यह वह देश न था, जिसके दर्शनों की इच्छा सदा मेरे हृदय में लहराया करती थी। यह तो कोई और देश था। यह अमेरिका या इँगलैण्ड था, मगर प्यारा भारत नहीं।

रेलगाड़ी जंगलों, पहाड़ों, नदियों और मैदानों को पार करती हुई मेरे प्यारे गाँव के निकट पहुँची, जो किसी समय में फूल, पत्तों और फलों की बहुतायत तथा नदी-नालों की अधिकता से स्वर्ग को मात कर रहा था। मैं जब गाड़ी से उतरा, तो मेरा हृदय बाँसों उछल रहा था। अब अपना प्यारा घर देखूँगा—अपने बालपन के प्यारे साथियों से मिलूँगा। मैं इस समय बिलकुल भूल गया था कि मैं ६० वर्ष का बूढ़ा हूँ। ज्यों-ज्यों मैं गाँव के निकट आता था, मेरे पग तेज़ होते जाते थे, और हृदय में अकथनीय आनंद का स्रोत उमड़ रहा था। प्रत्येक वस्तु पर आँखें फाड़-

फाड़कर दृष्टि डालता। अहा! यह वही नाला है, जिसमें हम रोज घोड़े नहलाते थे, और स्वयं भी डुबकियाँ लगाते थे, किन्तु अब उसके दोनों ओर काँटेदार तार लगे हुए थे, और सामने एक बँगला था, जिसमें दो अँगरेज़ बंदूकें लिए इधर-उधर ताक रहे थे। नाले में नहाने की सख्त मनाही थी।

गाँव में गया, और निगाहें बालपन के साथियों को खोजने लगीं; किन्तु शोक! वे सब-के-सब मृत्यु के ग्रास हो चुके थे। मेरा घर—मेरा टूटा-फूटा झोपड़ा—जिसकी गोद में मैं बरसों खेला था, जहाँ बचपन और बेफ़िक्री के आनंद लूटे थे, और जिनका चित्र अभी तक मेरी आँखों में फिर रहा था, वही मेरा प्यारा घर अब मिट्टी का ढेर हो गया था।

(३)

यह स्थान ग़ैर-आबाद न था। सैकड़ों आदमी चलते-फिरते नज़र आते थे, जो अदालत-कचहरी और थाना-पुलिस की बातें कर रहे थे। उनके मुखों से चिन्ता, निर्जीवता और उदासी प्रदर्शित होती थी। सब सांसारिक चिन्ताओं से व्यथित मालूम होते थे। मेरे साथियों के समान हृष्ट-पुष्ट, बलवान्, लाल चेहरे-वाले नवयुवक कहीं न देख पड़ते थे। उस अखाड़े के स्थान पर, जिसकी जड़ मेरे हाथों ने डाली थी, अब एक टूटा-फूटा स्कूल था। उसमें दुर्बल, कांति-हीन, रोगियों की-सी सूरतवाले बालक फटे कपड़े पहने बैठे ऊँघ रहे थे। उनको देखकर सहसा मेरे मुख से निकल पड़ा—"नहीं-नहीं, यह मेरा प्यारा देश नहीं है। यह

देश देखने मैं इतनी दूर से नहीं आया हूँ—यह मेरा प्यारा भारतवर्ष नहीं है।"

बरगद के पेड़ की ओर दौड़ा, जिसकी सुहावनी छाया में मैंने बचपन के आनन्द उड़ाए थे, जो हमारे छुटपन का क्रीड़ा-स्थल और युवावस्था का सुखप्रद कुंज था। आह! इस प्यारे बरगद को देखते ही हृदय पर एक बड़ा आघात पहुँचा, और दिल में महान् शोक उत्पन्न हुआ। उसे देखकर ऐसी-ऐसी दुःख दायक तथा हृदय-विदारक स्मृतियाँ ताजी हो गई कि घंटों पृथ्वी पर बैठे-बैठे मैं आँसू बहाता रहा। हा! यही बरगद है जिसकी डालों पर चढ़कर मैं फुनगियों तक पहुँचता था, जिसकी जटाएँ हमारी झूला थीं, और जिसके फल हमें सारे संसार की मिठाइयों से अधिक स्वादिष्ट मालूम होते थे। मेरे गले में बाँहें डालकर खेलनेवाले लँगोटिया यार, जो कभी रूठते थे, कभी मनाते थे, कहाँ गये? हाय! मैं बिना घर-बार का मुसाफिर अब क्या अकेला ही हूँ? क्या मेरा कोई भी साथी नहीं? इस बरगद के निकट अब थाना था, और बरगद के नीचे कोई लाल साफा बाँधे बैठा था। उसके आस-पास दस-बीस लाल पगड़ीवाले आदमी करबद्ध खड़े थे। वहाँ फटे-पुराने कपड़े पहने एक दुर्भिक्षग्रस्त पुरुष, जिस पर अभी चाबुकों की बौछार हुई थी, पड़ा सिसक रहा था। मुझे ध्यान आया कि यह मेरा प्यारा देश नहीं है, यह कोई और देश है। यह योरप है, अमेरिका है, मगर मेरी प्यारी मातृभूमि नहीं है—कदापि नहीं।

इधर से निराश होकर मैं उस चौपाल की ओर चला, जहाँ शाम के वक़ पिताजी गाँव के अन्य बुजुर्गों के साथ हुक्का पीते और हँसी-क़हक़हे उड़ाते थे। हम भी उस टाट के बिछौने पर कलाबाज़ियाँ खाया करते थे। कभी-कभी वहाँ पंचायत भी बैठती थी, जिसके सरपंच सदा पिताजी ही हुआ करते थे। इसी चौपाल के पास एक गोशाला थी, जहाँ गाँव भर की गाएँ रक्खी जाती थीं, और बछड़ों के साथ हम यहीं कलोलें किया करते थे। शोक ! अब उस चौपाल का पता तक न था! वहाँ अब गाँवों में टीका लगाने की चौकी और डाकखाना था।

उस समय इसी चौपाल से लगा एक कोल्हवाड़ा था, जहाँ जाड़े के दिनों में ईख पेरी जाती थी, और गुड़ की सुगंध से चित्त प्रसन्न हो जाता था। हम और हमारे साथी गँडेरियों के लिये वहाँ बैठे रहते, और गँडेरियाँ कतरनेवाले मजदूरों के हस्त-लाघव को देखकर आश्चर्य किया करते थे। वहाँ हजारों बार मैंने कच्चा रस और पक्का दूध मिलाकर पिया था। आस-पास के घरों की स्त्रियाँ और बालक अपने-अपने घड़े लेकर वहाँ आते थे, और उनमें रस भरकर ले जाते थे। शोक है कि वे कोल्हू अब तक ज्यों-के-त्यों खड़े थे, किंतु कोल्हवाड़े की जगह पर अब एक सन लपेटनेवाली मशीन लगी थी, और उसके सामने एक तम्बोली और सिगरेटवाले की दूकान थी। इन हृदय विदारक दृश्यों को देखकर मैंने एक आदमी, से जो देखने में सभ्य मालूम होता था, पूछा—"महाशय, मैं एक परदेशी यात्री हूँ, रात-भर लेट रहने की

मुझे आज्ञा दीजिएगा ?" इस आदमी ने मुझे सिर से पैर तक गहरी दृष्टि से देखा, और बोला—'आगे जाओ, यहाँ जगह नहीं है।' मैं आगे गया, और वहाँ भी यही उत्तर मिला। पाँचवीं बार एक सज्जन से स्थान माँगने पर उन्होंने एक मुट्ठी चने मेरे हाथ पर रख दिए। चने मेरे हाथ से छूट पड़े, और नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा बहने लगी। मुख से सहसा निकल पड़ा—"हाय! यह मेरा देश नहीं है: यह कोई और देश है। यह हमारा अतिथि-सत्कारी प्यारा भारत नहीं है—कदापि नहीं है।"

मैंने एक सिगरेट की डिबिया ख़रीदी, और एक सुनसान जगह पर बैठकर सिगरेट पीते हुए पूर्व समय की याद करने लगा। अचानक मुझे धर्मशाला का स्मरण हो आया, जो मेरे विदेश जाते समय बन रही थी। मैं उस ओर लपका कि रात किसी प्रकार वहीं काट लूँ, मगर शोक! शोक!! महान शोक!!! धर्मशाला ज्यों-की-त्यों खड़ी थी, किन्तु उसमें ग़रीब यात्रियों के टिकने के लिये स्थान न था। मदिरा, दुराचार और जुए ने उसे अपना घर बना रक्खा था। यह दशा देखकर विवशतः मेरे हृदय से एक सर्द आह निकल पड़ी, और मैं जोर से चिल्ला उठा—"नहीं, नहीं, नहीं, और हजार बार नहीं है—यह मेरा प्यारा भारत नहीं है। यह कोई और देश है। यह योरप है, अमेरिका है, मगर भारत कदापि नहीं है।"

(४)

अँधेरी रात थी। गीदड़ और कुत्ते अपने कर्कश स्वर में गीत गा

रहे थे। मैं अपना दुःखित हृदय लेकर उसी नाले के किनारे जाकर बैठ गया, और सोचने लगा—अब क्या करूँ? क्या फिर अपने पुत्रों के पास लौट जाऊँ, और अपना यह शरीर अमेरिका की मिट्टी में मिलाऊँ? अब तक मेरी मातृभूमि थी; मैं विदेश में जरूर था, किन्तु मुझे अपने प्यारे देश की याद बनी थी, पर अब मैं देश-विहीन हूँ। मेरा कोई देश नहीं है। इसी सोच विचार में मैं बहुत देर तक घुटनों पर सिर रक्खे मौन बैठा रहा। रात्रि नेत्रों में ही व्यतीत की। सहसा घंटेवाले ने तीन बजाए, और किसी के गाने का शब्द कानों में आया। हृदय गद्गद हो गया! यह तो देश का ही राग है, यह तो मातृभूमि का ही स्वर है। मैं तुरंत उठ खड़ा हुआ, क्या देखता हूँ कि १५-२० वृद्धा स्त्रियाँ, सफ़ेद धोतियाँ पहने, हाथों में लोटे लिए, स्नान को जा रही हैं, और गाती जाती हैं—

"हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो—"

मैं इस गीत को सुनकर तन्मय हो ही रहा था कि इतने में मुझे बहुत आदमियों का बोलचाल सुन पड़ा। उनमें से कुछ लोग हाथों में पीतल के कमंडलु लिए हुए शिव-शिव, हर-हर, गंगे-गंगे, नारायण-नारायण आदि शब्द बोलते हुए चले जाते थे। मधुर, भावमय और प्रभावोत्पादक राग से मेरे हृदय पर जो प्रभाव हुआ, उसका वर्णन करना कठिन है।

मैंने अमेरिका की रमणियों का अलाप सुना था, सहस्त्रों बार उनकी जिह्वा से प्रेम और प्यार के शब्द सुने थे, उनके हृदयाकर्षक

वचनों का आनंद उठाया था, मैंने सुरीले पक्षियों का चहचहाना भी सुना था, किंतु जो आनंद, जो मज़ा और जो सुख मुझे इस राग में आया, वह मुझे जीवन में कभी प्राप्त नहीं हुआ था। मैंने ख़ुद गुनगुनाकर गाया—

"हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो—"

मेरे हृदय में फिर उत्साह आया कि ये तो मेरे प्यारे देश की ही बातें हैं। आनंदातिरेक से मेरा हृदय आनंदमग्न हो गया। मैं भी इन आदमियों के साथ हो लिया, और ६ मील तक पहाड़ी मार्ग पार करके उसी नदी के किनारे पहुँचा, जिसका नाम पतित-पावनी है, जिसकी लहरों में डुबकी लगाना और जिसकी गोद में मरना प्रत्येक हिन्दू अपना परम सौभाग्य समझता है। पतित-पावनी भागीरथी गङ्गा मेरे प्यारे गाँव से छै-सात मील पर बहती थीं। किसी समय मैं घोड़े पर चढ़कर नित्य स्नान करने जाता था। गङ्गा माता के दर्शनों की लालसा मेरे हृदय में सदा रहती थी। यहाँ मैंने हज़ारों मनुष्यों को इस ठंडे पानी में डुबकी लगाते हुए देखा। कुछ लोग बालू पर बैठे गायत्री-मन्त्र जप रहे थे। कुछ लोग हवन करने में संलग्न थे। कुछ माथे पर तिलक लगा रहे थे, और कुछ लोग सस्वर वेद-मन्त्र पढ़ रहे थे। मेरा हृदय फिर उत्साहित हुआ, और मैं ज़ोर से कह उठा—"हाँ, हाँ, यही मेरा प्यारा देश है, यही मेरी पवित्र मातृ-भूमि है, यही मेरा सर्वश्रेष्ठ भारत है, और इसी के दर्शनों की

मेरी उत्कट इच्छा थी ! इसी की पवित्र धूलि के कण बनने की मेरी प्रबल अभिलाषा है ।"

(५)

मैं विशेष आनंद में मग्न था । मैंने अपना पुराना कोट और पतलून उतारकर फेंक दिया, और गङ्गा माता की गोद में जा गिरा, जैसे कोई भोला-भाला बालक दिन-भर निर्दय लोगों के साथ रहने के बाद संध्या को अपनी प्यारी माता की गोद में दौड़कर चला आवे, और उनकी छाती से चिपट जाय । हाँ, अब मैं अपने देश में हूँ । यह मेरी प्यारी मातृभूमि है । ये लोग मेरे भाई हैं और गङ्गा मेरी माता है ।

मैंने ठीक गङ्गा के किनारे एक छोटी-सी कुटी बनवा ली है । अब मुझे सिवा राम-नाम जपने के और कोई काम नहीं है । मैं नित्य प्रातः-सायं गङ्गास्नान करता हूँ, और मेरी प्रबल इच्छा है कि इसी स्थान पर मेरे प्राण निकलें, और मेरी अस्थियाँ गङ्गा माता की लहरों की भेंट हों ।

मेरी स्त्री और मेरे पुत्र बार-बार बुलाते हैं, मगर अब मैं यह गङ्गा माता का तट और अपना प्यारा देश छोड़कर वहाँ नहीं जा सकता । मैं अपनी मिट्टी गङ्गाजी को ही सौंपूँगा । अब संसार की कोई आकांक्षा मुझे इस स्थान से नहीं हटा सकती, क्योंकि यह मेरा प्यारा देश और यही प्यारी मातृभूमि है । बस, मेरी उत्कट इच्छा यही है कि मैं अपनी प्यारी मातृभूमि में ही अपने प्राण विसर्जन करूँ ।

प्रश्न

१—इस कहानी में तुमने जिस भारतीय यात्री का हाल पढ़ा है, अमेरिका जाकर वह सब प्रकार से सम्पन्न और सुखी हो गया था फिर भी उसके हृदय में क्या अभिलाषा शेष रह गई थी ?

२—भारत में लौट आने पर भी वह क्यों बारम्बार इसे अपना देश नहीं कहता था ?

३—कौन कौन से लक्षण देखकर उसने इसे भारत देश कहा ?

४—"रात्रि नेत्रों में ही व्यतीत की" इसका क्या अर्थ है ?

५—इस बूढ़े यात्री ने भारतवर्ष पर योरपीय संस्कृति का क्या प्रभाव देखा ?

अभ्यास

१—इस पाठ में आये हुए मुहाविरों को छाँटकर अपनी कापी में लिख लो। उनका अभिप्राय समझाओ और वाक्यों में प्रयोग करो।

२—आनन्दातिरेक, हस्तलाघव, प्रभावोत्पादक और विसर्जन को अर्थ सहित अपने शब्द कोष में लिखलो।

३—भारत अतिथि-सत्कार में अद्वितीय था, इसके कुछ उदाहरण दो।

४—यह कहानी अपने शब्दों में कहो।

५—इसी के आधार पर तुम भी एक कहानी लिखने का प्रयास करो।



२५—प्रभात

[मंगलाप्रसाद पारितोषिक-विजेता, खड़ी बोली के प्रथम आचार्य, प्रसिद्ध साहित्य-सेवी और भाषा-मर्मज्ञ श्री अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध' लिखित 'प्रभात' में इनकी कोमल-कान्त-पदावली, शब्दों का सौष्ठव और प्राकृतिक-वर्णन-पटुता देखो। प्रिय प्रवास, चोखे-चौपदे और रस-कलस में इनकी अन्य सुन्दर कविताएँ पढ़ो।]

(१)

प्रकृति-बधू ने असित वसन बदला, सित पहना।
तन से दिया उतार तारकावलि का गहना।
उसका नव अनुराग नील नभ-तल पर छाया।
हुई रागमय दिशा, निशा ने बदन छिपाया॥

(२)

आरंजित हो, उषा सुन्दरी ने सुख माना।
लोहित आभा-वलित वितान अधर से ताना।
नियति करों से छिनी छपाकर की छवि सारी।
उठी धरा पर पड़ी सितासित चादर न्यारी॥

(३)

ओस-बिन्दु ने द्रवित हृदय से भू को सरस बनाया।
अवनी तल पर बिलस-बिलस मोती बरसाया।
खुले कंठ कमनीय गिरा ने बीन बजाई।
विहग-वृन्द ने उमग मधुर रागिनी सुनाई॥

(४)

शीतल बहा समीर, हुई विकसित कलिकायें।
तरु दल बिलसे, बनी ललित-तम सब लतिकायें।
सर में खिले सरोज, होगई सित सरितायें।
सुरभित हुआ दिगन्त, चल पड़ीं अलि मालायें॥

(५)

हुआ बाल रवि उदय, कनक-निभ किरणें फूटीं।
भरित तिमिर पर परम प्रभामय बनकर छूटीं।
जगत जगमगा उठा, विभा वसुधा में फैली।
खुली अलौकिक ज्योति पुंज की मंजुल शैली॥

×

(६)

पहने कंचन-कलित-कीट मुक्ता-मणि-माला।
विकच कुसुम का हार विभाकर-कर का पाला।
प्राची के कमनीय अंक में लसित दिखाया।
लिये करों में कमल प्रभात विहँसता आया॥

प्रश्न

१—सूर्योदय के कारण प्रकृति में क्या क्या परिवर्तन हो जाते हैं?

२—'प्रकृति-वधू' के 'असित वसन' उतार देने से कवि का क्या तात्पर्य है?

३—नील-नभ-तल पर नव अनुराग छाया, का क्या आशय है?

अभ्यास

१—इस कविता में से उपमा और अनुप्रास अलंकार छाँटो और उसकी व्याख्या करो।

२—इस कविता के पाँचवें पद का भावार्थ लिखो।

३—अपने शब्दों में प्रभात का वर्णन करो—

४—निम्नलिखित शब्दों की व्याख्या करो :—

असित, रागमय, आरजित, दिगन्त।

५—अन्तिम छन्द का अन्वय करो।

—:o:—

२६—पशु-पक्षियों का शृंगार

[श्री शालिग्राम वर्मा ने विज्ञान-सम्बन्धी विवेचन-पूर्ण लेख लिखने में अच्छी प्रसिद्धि पाई है। इनके लिखे हुए इस लेख में पढ़ो :—

१—पशु-पक्षियों की क्रियाओं का रहस्य।

२—मनुष्य ने शृंगार-प्रियता पशु-पक्षियों से सीखी है।

३—भाषा और विवेचना शक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी शक्तियाँ तथा गुण जीवधारियों में मनुष्यों से भी अधिक मात्रा में मौजूद हैं।]

आधुनिक सभ्यता की प्रबल तरंगों के प्रवाह में पड़ कर प्रत्येक मनुष्य को अपनी शारीरिक, मानसिक और आर्थिक उन्नति का अभिमान होना स्वाभाविक मालूम होता है परन्तु इस

अभिमान के साथ-ही-साथ अपनी सर्वोत्तमता और सर्वश्रेष्ठता का अहंकार होना अनुचित और सर्वथा निषिद्ध है।

भाषा और विवेचना-शक्ति के अतिरिक्त अन्य जितनी भी शक्तियाँ तथा गुण मनुष्यों में पाये जाते हैं अन्य जीवधारियों में भी वे सब इतनी ही नहीं परन्तु उससे भी अधिक मात्रा में मौजूद हैं। इतना ही नहीं, वरन् बहुत सी क्रियाएँ जिन्हें मनुष्य अपनी सभ्यता का स्मारक समझते हैं और जिनके अभाव में वे अपने स्वजातियों को असभ्य और जंगली आदि सम्मानित नामों से पुकारा करते हैं, उन्होंने स्वयं उन जीव-जन्तुओं से सीखी हैं जिन्हें वे कभी भी इस विचार से सम्मानित दृष्टि से नहीं देख सकते।

यदि आधुनिक युरोपियन समाज की सभ्यता के आदर्श के अनुसार इन जीवों के शृंगार आदि की विवेचना की जाय, तो पहरावे की तड़क-भड़क और बालों को विचित्र-विचित्र प्रकार से काढ़ने और सँवारने के फैशन को सभ्यता का चिन्ह समझने वालों को बड़ा कौतूहल होगा। मुँह धोना, स्नान करना, दाँत साफ करना, बालों में कंघी करना, इत्यादि जितने भी कार्य सभ्य मनुष्य करते हैं वे सब अन्य जीवधारी भी बड़ी उत्तमता और योग्यता से करते हैं।

बहुत से पक्षी केवल पवित्रता के ही विचार से जल-विहार किया करते हैं। अन्य जीवधारी जीभ से चाटकर तथा मिट्टी में लपट कर अपने शरीर को साफ़ कर लेते हैं। कुछ मिट्टी और पानी

में विहार करना केवल सुखदायक और श्रमहारी जानते हैं। पक्षियों की तथा अन्य जीवधारियों की ये क्रियाएँ कभी-कभी बड़ी बुद्धिमत्ता और उपयोगिता की द्योतक होती हैं।

स्तनपायी जीवों में हाथी का जल-विहार और मिट्टी लपेट कर स्नान करना, उपर्युक्त कथन का बड़ा अच्छा उदाहरण है। हाथी के लिए मिट्टी लपेटना और कीचड़ में लोटना बड़ा लाभदायक है और इस विचार से हाथियों के स्नान के लिए यह परमावश्यक क्रिया है। इस भूधराकार जीव की चमड़ी प्रायः सब जीवों से मोटी और कड़ी होने पर भी इसे जंगलों में खटमल की तरह के एक प्रकार के कीड़ों से बड़ा कष्ट पहुँचता है। वे इसे ऐसी निर्दयता से काटते हैं कि इतना बड़ा डील-डौल होने पर भी इन तुच्छ जीवों के आक्रमण से वह व्याकुल हो जाता है और इन्हें नष्ट करने के लिए सदैव चेष्टा किया करता है। तुमने ऐसे कुत्तों को कीचड़ में लोटते हुए देखा होगा जिन्हें किल्लियाँ पड़ जाने से बड़ा कष्ट होता है। ठीक इसी प्रकार और इसी आशय से गजराज को भी इन कष्टदायक जन्तुओं का विनाश करना पड़ता है।

प्रायः दोपहर के समय हाथी किसी अध-सूखे तालाब में जाकर कीचड़ में लोटने लगता है और जब उसके शरीर से कीचड़ लिपट जाती है तो वह धूप में आकर घंटों तक चुपचाप बिना हिले-डुले खड़ा रहता है। जब यह मिट्टी की तह सूख जाती है तो वह अपने शरीर को सिकोड़कर और इधर-उधर हिला कर

इसे छुड़ा डालता है और इस प्रकार मिट्टी के साथ साथ इन कीटों को अपने शरीर पर से अलग कर देता है।

कुत्ते, सुअर और भैंस इत्यादि जानवर इसी प्रकार इन कीटों से अपनी रक्षा करते हैं। हाथी प्रायः रात के समय जल-विहार किया करते हैं और इस अवसर पर या तो पूर्णतया जल-मग्न होकर अथवा जल में खड़े होकर अपनी सूँड़ से पानी के फुहारे छोड़ते हैं और स्नान करने के पश्चात् किसी पास के वृक्ष की डाली तोड़ कर और सूँड़ से पकड़ कर पंखे की भाँति हिलाने लगते हैं। तुमने हाथी को इस प्रकार डाली के पंखे से हवा करते हुए तथा मक्खियाँ उड़ाते हुए देखा होगा और इसलिए तुम अवश्य जानते होगे कि पंखा हिलाने में हाथी जो दक्षता और निपुणता दिखाता है वह कितनी सराहनीय है।

आधुनिक फैशन की यदि एक प्रदर्शिनी इस प्रकार की जाय कि उसमें मनुष्यों के साथ-साथ अन्य जीवों को भी समान स्थान मिले,तो तुमको आश्चर्य होगा कि इस विषय के सारे पदक और उपहार इन्हीं जीवधारियों के हिस्से में आ जायँगे।

उत्तरी ध्रुव के हिम-पूर्ण समुद्रों में एक प्रकार की रोएँदार सील-मछली रहती है। इसके अगले पैर में पाँच उँगलियाँ होती हैं। इन उँगलियों के बीच में जालीदार झिल्ली होती है और पिछले पैर पीछे की ओर मुड़े होते हैं। इन जीवों के कानों की जगह छोटे-छोटे छिद्र होते है। जब इन्हें पानी में से निकाल कर थल भाग में लाते हैं तो इनकी छोटी-छोटी टाँगें इनके भार

ल सकतीं और ये पेट के बल घिसट कर चलने
नके अगले पैरों तथा हाथों में एक प्रकार का छोटा-
रहता है, जिससे ये अपने चेहरे के बालों को जो



सील मछली

ति ऊपर के ओठों पर होते हैं, साफ किया करती हैं
मी पड़ती है तो यही कंघा इनके लिए पंखों का काम
से यात्रियों ने अकसर इनके दल के दल खड़े हुए
हुए देखे हैं। इन लोगों का कहना है कि ये जीव बड़े
र स्वाभाविकता से पखा हिलाते हुए देखे गये हैं और
ालूम होते हैं। इन जीवों की इस आदत से युरोपियन

यात्रियों ने बड़ा लाभ उठाया है और इन्हें पकड़-पकड़ कर एक प्रकार की वाद्य-मंडली बनायी है जो छोटी-छोटी झाँझें और डफ बजाया करती हैं।

सीलों के बाद ओपोसम इस विषय में बड़े सिद्ध-हस्त होते हैं। ये जीव जंगलों में पेड़ों पर रहते हैं। इनकी पूँछ लंगूर की भाँति मुड़ी रहती है। इससे इन्हें पेड़ों से लटकने में बड़ा सुभीता होता है। इनकी नाक लम्बी होती है और यहाँ की चमड़ी पर बाल नहीं होते। इनके पंजे नहीं होते, पर इनकी उँगलियों की बनावट ऐसी होती है कि ये अच्छी तरह मुट्ठी में चीज को पकड़ सकते हैं।



ओपोसम

इनके पेट के पास एक प्रकार की थैली होती है जिसमें रख कर ये अपने बच्चों को पालते हैं और जब उनकी आँखें खुल जाती हैं तो उन्हें बाहर निकाल देते हैं। इनकी उँगलियों के बीच में झिल्लीदार खाल होती है और ये जीव प्रत्येक ४ या ५ मिनट के पश्चात् अपने हाथ और पैर साफ किया करते हैं। हमारे विचार में संसार के बहुत कम जीवों को इनसे अधिक पवित्रता

का विचार है, क्योंकि जितनी देर ये जीव जागते रहते हैं इनका सारा समय हाथ और पैरों की सफाई में खर्च होता है।

शेर, चीते इत्यादि मांसाहारी जीव भी बिल्ली की भाँति अपनी सफाई कर लिया करते हैं। ये अपने अगले पंजे की गद्दीदार हथेली को जीभ से चाट कर भिगो लेते हैं। इसके पश्चात् उसे मुँह पर फेर कर चेहरे की सफाई कर लेते हैं इसी प्रकार जीभ चाटकर वे सारे शरीर पर ब्रुश कर लेते हैं और पैर से स्पंज और ब्रुश दोनों का काम निकालते हैं। चूहे और खरहे भी अपने पैरों से यही काम लेते हैं। खरहे के पैर से अच्छा ब्रुश संसार भर में मिलना कठिन है इसलिए नाटक के पात्र अपना शृङ्गार करने में इन्हें बड़े चाव से काम में लाते हैं।

कुत्ते जीभ से चाट कर अपना शरीर साफ कर लेते हैं। शिकारी कुत्तों में यह आदत बहुत अधिक देखी गयी है। दिन भर के शिकार की मार-धाड़ से लौटने पर ये कुत्ते ज्योंही घर पर पहुँचते हैं कि इन्हें पहले अपनी स्वच्छता का ध्यान आता है। प्रायः देखा गया है कि कीचड़ आदि में लिथड़ जाने से ये कुत्ते झाड़ियों या किसी सूखे पेड़ के तने से रगड़ कर अपने शरीर को पोंछ डालते हैं।

पालतू जानवरों में घोड़े, गाय इत्यादि जीभ से चाट कर अपना शरीर साफ़ कर लेते हैं और प्रायः अपने बच्चों तथा अन्य साथियों को भी सहायता देते हैं। बिल्ली अपनी जीभ से अपनी पीठ, पेट और हाथ-पैर इत्यादि चाट कर साफ कर लेती है और

गरदन तथा कानों के पास के भागों को पंजे की गद्दी से भिगो कर पोंछ डालती है। घोड़े इत्यादि जीवों की जीभ इतनी दूर तक नहीं पहुँच सकती, इसलिए वे एक दूसरे को चाट कर शरीर की सफ़ाई किया करते हैं।

इसके पश्चात् पक्षियों का नम्बर आता है। ये जीव अपने शृङ्गार के विषय में समस्त जीवधारियों से बढ़े हुए हैं और सब से आश्चर्य की बात यह है कि इनका शृङ्गार-दान प्रकृति ने इनके शरीर में ही बना रक्खा है उबटन, मंजन, तेल-फुलेल और कंघी इत्यादि सभी चीजें इन्हें प्रकृति की ओर से प्रदान की गयी हैं और ये पक्षी प्रतिदिन इनका उपयोग किया करते हैं। उबटन का कार्य ये चिकनी मिट्टी से लेते हैं। बालू और रेह इत्यादि मंजन और पाउडर का काम देते हैं, तथा तेल और फुलेल की शीशी उनकी पूँछ के पास छिपी हुई मौजूद रहती है। इसमें एक प्रकार का द्रव-पदार्थ भरा रहता है जिससे ये पक्षी अपने पंखों को चिकना और चमकीला कर लेते हैं। यह शीशी पूँछ के ऊपर के हिस्सों में पान के आकार की होती है और इसके ऊपर छोटे-छोटे मुलायम परों की गद्दी-सी बनी रहती है।

जल-मुर्गाबी में यह शीशी बड़ी अच्छी तरह बनी होती है और ये पक्षी अपना शृङ्गार करते समय इस दैवी देन का भली-प्रकार से उपयोग करते हैं। बतखें, कबूतर और सारस इत्यादि जब अपनी पूँछ के परों में चोंच को छिपा लेते हैं तो वे इसी शीशी में से तेल निकालते हैं और अपने शरीर पर मल लिया

इन पक्षियों के अतिरिक्त हूपो और हार्नबिल नामक
भी ये थैलियाँ मौजूद हैं। इस दूसरे पक्षी के स्राव में
भी आश्चर्य-जनक गुण यह है कि यह रंगीन होता है



जल-मुर्गाबी

मलने से इस पक्षी की गरदन और पंखों का रंग पीला
है। जहाँ तक वैज्ञानिकों को इस समय तक ज्ञात हुआ
में और कोई भी पक्षी या जीव ऐसा नहीं है जो इस
ने बालों में खिज़ाब लगाता हो।

पक्षियों की चोंच की बनावट बड़ी विचित्र होती है और प्रायः इनकी चोंच का आकार इनके भोज्य पदार्थों की विभिन्नता पर निर्भर होता है। मक्खी आदि उड़ने वाले जीवों को पकड़ कर खाने वाले पक्षियों की चोंच छोटी और चौड़ी होती है। फल तथा गुबरीले खाने वाले पक्षियों की चोंच नोकीली और मुड़ी होती है। कीचड़ में से कीड़े इत्यादि जीवों को खाने वाले पक्षियों की चोंच चौड़ी और चपटी होती है।

इसी तरह कुछ चिड़ियाँ ऐसी भी हैं जो अपने शृङ्गार में पाउडर का भी प्रयोग करती हैं। इनके परों पर बड़े विचित्र और सुन्दर हल्के हल्के रंगीन दाग और धारियाँ इसी पाउडर के कारण बन जाती हैं। ये बड़ी चित्ताकर्षक मालूम होती हैं और इन पक्षियों की शोभा को बढ़ा देती हैं। भूरे तोते, शिकरे और काकातुआ नामक पक्षियों में यह गुण विशेष रूप से पाया जाता है। इन पक्षियों के एक प्रकार के छोटे-छोटे और मुलायम पंख होते हैं जिन्हें पाउडर वाले पंख कहते हैं। इनके पुराने हो जाने तथा झड़ जाने पर यह पाउडर उत्पन्न हो जाता है और इन पंखों के बीच जमा रहता है।

कबूतरों के पंजों में भी यह पाउडर पाया जाता है। विज्ञान वेत्ताओं ने बड़ी खोज से इस बात का पता लगाया है कि पक्षियों का पाउडर तथा तेल लगाना केवल पानी की सर्दी दूर करने के लिए है क्योंकि वर्षा-ऋतु में इन पाउडर वाले पक्षियों के पंख अन्य सजातियों की अपेक्षा बहुत कम भीगते हैं। इसीलिए ये जीव वर्षा-

ऋतु में जल-विहार करके बड़े मग्न होते हैं और जल के फुहारे में आनन्द से किलोल करते हैं।

शिकरे, उड़ुनी, उल्लू इत्यादि पक्षियों को प्रकृति ने कंघी प्रदान की है और ये जीव इस कंघी से उन छोटे-छोटे पतंगों को झाड़ देते हैं जो हवा में उड़ते समय उनके मुख के पास बालों में उलझ जाते हैं। ये कंघियाँ इन पक्षियों के बीच की उँगली में बनी होती हैं और बहुत से वैज्ञानिकों ने इन कंघियों की बनावट के विषय में बड़ी भारी खोज और बड़ी युक्ति-पूर्ण कल्पनाएँ की हैं।

इन कंघियों के विषय में एक बड़ी विचित्र बात यह है कि प्रकृति ने बहुत-से ऐसे जीवों को यह अवयव प्रदान किया है जिन्हें इसकी कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती और जिन पक्षियों को इसकी आवश्यकता है, उन्हीं में इसका अभाव है। प्रकृति के इस आश्चर्य-पूर्ण कृत्य का कोई रहस्य अभी तक मालूम नहीं हुआ। कई वैज्ञानिकों का कहना है यदि नाईजार को यह कंघी मिली होती तो वह इस कंघी द्वारा अपनी दाढ़ी में से कीड़ों को झाड़ देता, परन्तु उसे यह नहीं मिली। अन्य दाढ़ी-विहीन पक्षियों को (जैसे अमेरिका के नाईट-हक) यह कंघी प्रदान करने की क्या आवश्यकता थी? शिकरे के भी दाढ़ी नहीं होती पर तो भी उसे कंघी प्रदान की गयी है। इन सब बातों का विचार करके हमें कहना पड़ेगा कि पक्षियों को यह कंघी शरीर खुजलाने के लिए दी गयी है।

पशुओं में शृङ्गार-प्रियता और बनाव-चुनाव की आदत बहुत कम पायी जाती है; परन्तु पक्षियों में यह गुण भी पाया जाता है और ये जीव इस विषय में बड़े सिद्धहस्त मालूम होते हैं। मौट मौट नामक पक्षी जो मेक्सिको और मध्य अमेरिका में पाया जाता है, बड़ा फैशन-प्रिय होता है। इसकी चोंच आरे की-सी दाँतेदार होती है। इस चोंच से यह अपनी पूँछ के बालों को कतर-कतर कर टेनिस के बल्ले के आकार का बना लेता है। इस पक्षी को अपनी पूँछ का बड़ा घमंड है क्योंकि वह बार बार इसकी सुन्दरता बढ़ाने की चेष्टा किया करता है। ऐसी दाँतेदार चोंच, पायी तो कई पक्षियों में जाती है पर पूँछ कतरने का काम मौट-मौट के सिवाय इनसे कोई भी नहीं लेता।

शृङ्गार-विषयक उपयुक्त सामग्री के अतिरिक्त ये पक्षी जल और मिट्टी का भी प्रयोग करते हैं। गौरैया जल और मिट्टी दोनों ही काम में लाती है। पर यह मिट्टी बड़ी चिकनी, बारीक और सूखी होती है। लावा और तीतर पक्षी भी इसी प्रकार के जीव हैं और रेत से स्नान करते हैं। लावा तो गौरैया के भाँति सड़कों की बारीक मिट्टी का प्रयोग करता है, पर तीतर सूखी घास की जड़ में परों को फड़फड़ाता फिरता है और उन्हें रेह आदि से साफ कर लेता है।

इसी प्रकार जल से स्नान करने वाले पक्षी भी बड़े शौकिन होते हैं और मेंह में स्नान करके बड़े प्रसन्न होते हैं। तुम बहुत से जल-विहारी पक्षियों से परिचित होगे। जंगली कबूतर और

जंगली बत्तखें प्रातःकाल ही स्नान कर लेती हैं। जंगली बत्तखें खारा पानी पीने तथा खारे पानी के जीवों को खाने पर भी ताजे पानी में स्नान करना पसन्द करती हैं और कभी-कभी मीलों तक ऐसे तालाबों में जल-विहार करने के लिए पहुँच जाती हैं।

इस वर्णन को पढ़ कर यह भली-भाँति विदित हो गया होगा कि मनुष्यों की तरह पशु-पक्षी भी श्रृङ्गार-प्रिय ही नहीं होते वरन् इसे अपना नित्य कर्म समझते हैं। बहुत से जीवों के लिए तो ये इतने आवश्यक कार्य हैं कि इनके बिना इन्हें अपने जीवन में आनन्द और सुख का अनुभव ही नहीं होता।

प्रश्न

१—शृंगारिक सामग्रियों के अतिरिक्त पक्षी अन्य किन-किन वस्तुओं का प्रयोग करते हैं?

२—बहुत से पक्षी किस विचार से जल-विहार किया करते हैं?

३—अन्य जीवधारी किस प्रकार अपने शरीर को साफ़ किया करते हैं?

४—हाथी अपने शरीर में मिट्टी क्यों लपेटता है? कीचड़ में लोटना और जल में स्नान करना उसके लिए क्यों लाभकारी है?

५—पक्षी उबटन का कार्य किस वस्तु से लेते हैं?

अभ्यास

१—पशु-पक्षियों के श्रृङ्गार पर एक छोटा-सा निबन्ध लिखो।

२—हाथी की क्रियाओं पर प्रकाश डालते हुए यह बताओ कि वे मनुष्य की क्रियाओं से किस प्रकार समानता रखते हैं।

पशुओं में शृङ्गार-प्रियता और बनाव-चुनाव की आदत बहुत कम पायी जाती है; परन्तु पक्षियों में यह गुण भी पाया जाता है और ये जीव इस विषय में बड़े मिठ्ठल्म्न मालूम होते हैं. मौट-मौट नामक पक्षी जो मेक्सिको और मध्य अमेरिका में पाया जाता है, बड़ा फैशन-प्रिय होता है। इसकी चोंच आरे की-सी दाँतेदार होती है। इस चोंच से यह अपनी पूँछ के बालों को कतर-कतर कर टैनिस के बल्ले के आकार का बना लेता है। इस पक्षी को अपनी पूँछ का बड़ा घमंड है क्योंकि यह बार-बार इसकी सुन्दरता बढ़ाने की चेष्टा किया करता है। ऐसी दाँतेदार चोंच, पायी तो कई पक्षियों में जाती है, पर पूँछ कतरने का काम मौट-मौट के सिवाय इससे कोई भी नहीं लेता।

शृङ्गार-विषयक उपयुक्त सामग्री के अतिरिक्त ये पक्षी जल और मिट्टी का भी प्रयोग करते हैं। गौरैया जल और मिट्टी दोनों ही काम में लाती है। पर यह मिट्टी बड़ी चिकनी, बारीक और सूखी होती है। लावा और तीतर पक्षी भी इसी प्रकार के जीव हैं और रेत से स्नान करते हैं। लावा तो गौरैया के भाँति सड़कों की बारीक मिट्टी का प्रयोग करता है, पर तीतर सूखी घास की जड़ में परों को फड़फड़ाता फिरता है और उन्हें रेह आदि से साफ़ कर लेता है।

इसी प्रकार जल से स्नान करने वाले पक्षी भी बड़े शौकिन होते हैं और मेंह में स्नान करके बड़े प्रसन्न होते हैं। तुम बहुत से जल-विहारी पक्षियों से परिचित होगे। जंगली कबूतर और

जंगली बत्तखें प्रातःकाल ही स्नान कर लेती हैं। जंगली बत्तखें खारा पानी पीने तथा खारे पानी के जीवों को खाने पर भी ताजे पानी में स्नान करना पसन्द करती हैं और कभी-कभी मीलों तक ऐसे तालाबों में जल-विहार करने के लिए पहुँच जाती हैं।

इस वर्णन को पढ़ कर यह भली भाँति विदित हो गया होगा कि मनुष्यों की तरह पशु-पक्षी भी शृङ्गार-प्रिय ही नहीं होते वरन् इसे अपना नित्य कर्म समझते हैं। बहुत से जीवों के लिए तो ये इतने आवश्यक कार्य हैं कि इनके बिना इन्हें अपने जीवन में आनन्द और सुख का अनुभव ही नहीं होता।

प्रश्न

१—शृंगारिक सामग्रियों के अतिरिक्त पक्षी अन्य किन-किन वस्तुओं का प्रयोग करते हैं ?

२—बहुत से पक्षी किस विचार से जल-विहार किया करते हैं ?

३—अन्य जीवधारी किस प्रकार अपने शरीर को साफ़ किया करते हैं ?

४—हाथी अपने शरीर में मिट्टी क्यों लपेटता है ? कीचड़ में लोटना और जल में स्नान करना उसके लिए क्यों लाभकारी है ?

५—पक्षी उबटन का कार्य किस वस्तु से लेते हैं ?

अभ्यास

१—पशु-पक्षियों के शृङ्गार पर एक छोटा-सा निबन्ध लिखो।

२—हाथी की क्रियाओं पर प्रकाश डालते हुए यह बताओ कि वे मनुष्य की क्रियाओं से किस प्रकार समानता रखते हैं।

३—सील और ओपोसम की क्रियाओं का वर्णन करो।

४—'प्रकृति ने पक्षियों का शृङ्गार-दान उनके शरीर ही में बना रक्खा है।' पक्षियों के शरीर की बनावट पर प्रकाश डालते हुए उनकी इस विशेषता पर अपने विचार प्रकट करो।

५—विलोम शब्द लिखो—

सुखदायक, निर्दयी, सभ्य, उत्तम।

६—रिक्त स्थानों की पूर्ति करो—

(अ) मनुष्य को अपनी ·······और·······का अहङ्कार सर्वथा······ है।

२७—हिमालय के प्रति

[मातृभाषा एवं मातृभूमि-भक्त उदीयमान कवि श्री 'दिनकर' ने 'नवयुग की शंखध्वनि' सुनी है। वह भारत के प्रहरी हिमालय को जगा रहा है, इस बात को ध्यान में रखकर यह कविता पढ़ो।]

मेरे नगपति! मेरे विशाल!

साकार, दिव्य, गौरव विराट
पौरुष की पुंजी-भूत ज्वाल
मेरी जननी के हिम-किरीट
मेरे नगपति! मेरे विशाल!



हिमालय पर्वत

युग-युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त
युग-युग गर्वोन्नत, नित महान
निस्सीम व्योम में तान रहा
युग से किस महिमा का वितान
कैसी अखंड यह चिर-समाधि
यतिवर! कैसा यह अमर ध्यान
तू महा शून्य में खोज रहा
किस जटिल-समस्या का निदान
उलझन का कैसा विषम जाल
मेरे नगपति! मेरे विशाल!
ओ मौन तपस्या-लीन यती
पल-भर को तो कर दृगोन्मेष
रे ज्वालाओं से दग्ध विकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश
सुख सिन्धु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र
गंगा, यमुना की अमिय—धार
जिस पुण्य भूमि की ओर बही
तेरी विगलित करुणा उदार
जिसके द्वारों पर खड़ा क्रान्त
सीमापति! तूने की पुकार
'पद-दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार!'

उस पुण्यभूमि पर आज तपी
रे आन पड़ा संकट कराल
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे
हँस रहे चतुर्दिक् विविध व्याल !

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

कितनी मणियाँ लुट गईं, मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष
तू ध्यान-मग्न ही रहा, उधर
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश

कितनी द्रुपदा के बाल खुले
कितनी कलियों का अन्त हुआ
कह हृदय खोल चित्तौर ! यहाँ
कितने दिन ज्वाल-बसन्त हुआ

पूछे सिकता-कण से हिमपति
तेरा वह राजस्थान कहाँ
वन-वन स्वतन्त्रता-दीप लिये
फिरने वाला बलवान कहाँ

तू पूँछ अवध से राम कहाँ
वृन्दा ! बोलो, घनश्याम कहाँ
ओ मगध कहाँ मेरे अशोक
वह चन्द्रगुप्त बल धाम कहाँ

पैरों पर ही है पड़ी हुई
मिथिला भिखारिणी सुकुमारी
तू पूछ कहाँ इसने खोई
अपनी अनन्त निधियाँ सारी

 री कपिलवस्तु ! कह बुद्धदेव
के वे मंगल-उपदेश कहाँ
तिब्बत, इरान, जापान, चीन
तक गये हुए सन्देश कहाँ

वैशाली के भग्नावशेष से
पूछ लिच्छवी शान कहाँ
ओ री उदास गंडकी ! बता
विद्या-पति कवि के गान कहाँ

तू मौन त्याग कर पूछ आज
बंगाल नवाबी ताज कहाँ
भारत का अन्तिम ज्योति-नयन
मेरा प्यारा 'सीराज' कहाँ ?

तू तरुण देश से पूछ अरे
गूँजा कैसा यह ध्वंस राग
अम्बुधि अन्तस्तल-बीच छिपी
यह सुलग रही है कौन आग

प्राची के प्राङ्गण-बीच देख
जल रहा स्वर्ण-युग-अग्नि ज्वाल



तू सिंहनाद कर जाग यती
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ
जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गांडीव, गदा
लौटा दे अर्जुन भीम वीर

कह दे शंकर से आज करें
वे प्रलय-नृत्य फिर एक बार
सारे भारत में गूंज उठे
हर-हर बम का फिर महोच्चार

ले अँगड़ाई उठ, हिले धरा
कर निज विराट स्वर में निनाद
तू शैलराट् ! हुंकार भरे
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद

तू मौन त्याग कर सिंहनाद
रे तपी ! आज तप का न काल
नवयुग शंख-ध्वनि जगा रही
तू जाग-जाग मेरे विशाल

मेरे जननी के हिम-किरीट
मेरे भारत के दिव्य भाल
नवयुग-शंखध्वनि जगा रही
जागे नगपति ! जागे विशाल !



प्रश्न

१—हिमालय से कवि का क्या अनुरोध है ?

२—इस कविता में हिमालय के लिये किन-किन विशेषणों का प्रयोग हुआ है ?

३—" ब्रह्मपुत्र, गंगा, यमुना की अमिय-धार " को हिमालय की विगलित करुणा क्यों कहा गया है ?

४—' ज्वाल-बसंत ' से कवि का क्या तात्पर्य है ?

५—हिमालय को कौन, क्या कह कर जगा रहा है ?

अभ्यास

१—हिमालय के ऊपर यदि तुमने कोई और कविता पढ़ी हो तो उससे इसकी तुलना करो।

२—इस कविता का कौन-सा पद तुम्हें सबसे अधिक अच्छा लगा, कारण सहित बताओ।

३—निम्नलिखित शब्दों की व्याख्या करो और इनको अपने वाक्यों में प्रयोग करो :—

पुंजीभूत, गर्वोन्नत, दृगोन्मेष, प्रांगण।

४—जिन व्यक्तियों का उल्लेख इस कविता में हुआ है उनकी कहानी सुनाओ।

२८—तुलसीदास जी की भावुकता

[आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल वैसे तो बस्ती जिले के रहने वाले थे, किन्तु आपका पठन-पाठन मिर्ज़ापुर में हुआ। वहीं पहाड़ों तथा जंगलों में घूम कर आपने प्रकृति के साथ सान्निध्य प्राप्त किया जो समय पाकर प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो गया तथा जिसका आभास प्रचुर परिमाण में आपकी कविताओं में मिलता है।

तुलसीदास; भ्रमरगीत, जायसी-ग्रन्थावली, बुद्धचरित्र, विश्वप्रपंच, विचारवीथी, हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा काव्य में रहस्यवाद।]

कवि की भावुकता का सब से अधिक पता यह देखने से चल सकता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं। राम-कथा के भीतर ये स्थल अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं—राम का अयोध्या-त्याग और पथिक के रूप में वनगमन; चित्रकूट में राम और भरत का मिलन; शबरी का आतिथ्य; लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप और भरत की परीक्षा। इन स्थलों को गोस्वामीजी ने अच्छी तरह पहिचाना है, क्योंकि इनका उन्होंने अधिक विस्तृत और विशद वर्णन किया है। एक सुन्दर राजकुमार के छोटे भाई और स्त्री को लेकर घर से निकलने और वन-वन फिरने से अधिक और मर्मस्पर्शी दृश्य क्या हो सकता है। इस दृश्य का गोस्वामीजी ने मानस, कवितावली और गीतावली तीनों में अत्यन्त सहृदयता के साथ वर्णन किया है। गीतावली में तो इस प्रसंग के सब से



गोस्वामी तुलसीदास

अधिक पद हैं। ऐसा दृश्य स्त्रियों के हृदय को सब से अधिक स्पर्श करने वाला, उनकी प्रीति, दया और आत्मत्याग को सब से अधिक उभारने वाला होता है, यह बात समझकर मार्ग में उन्होंने ग्राम वंधुओं का सन्निवेश किया है। ये स्त्रियाँ राम-जानकी के अनुपम-सौन्दर्य पर स्नेह-शिथिल हो जाती हैं, उनका वृतान्त सुन कर राजा की निष्ठुरता पर पछताती हैं, कैकेयी की कुचाल पर भला-बुरा कहती हैं। सौन्दर्य के साक्षात्कार से थोड़ी देर के लिए उनकी वृत्तियाँ कोमल हो जाती हैं। वे अपने को भूल जाती हैं। यह कोमलता उपकार-बुद्धि की जननी है—

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी॥
राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन-फल होहिं सुखारी॥
सहज बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा॥
रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं संग लागे॥

एक देखि बट छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गँवाइअ छिनुक स्रम, गवनब अबहिं कि प्रात॥

राम-जानकी के अयोध्या से निकलने का दृश्य वर्णन करने में गोस्वामी जी ने कुछ उठा नहीं रखा। सुशीलता के आगार रामचन्द्र प्रसन्नमुख निकल कर दास-दासियों को गुरु के सुपुर्द कर रहे हैं; सब से वही करने की प्रार्थना करते हैं, जिससे राजा का दुःख कम हो। उनकी सर्व भूतव्यापिनी सुशीलता ऐसी है कि उनके वियोग में पशु-पक्षी भी विकल हैं। भरतजी जब लौट क

अयोध्या आये, तब उन्हें सर-सरिताएँ भी श्रीहत दिखाई पड़ीं, नगर भी भयानक लगा। भरत को यदि राम-गमन का संवाद मिल गया होता, तो हम इसे भरत की हृदय की छाया कहते। पर घर में जाने के पहले उन्हें कुछ भी वृत्तान्त ज्ञात नहीं था। इससे हम सर-सरिता के श्रीहत होने का अर्थ उनकी निर्जनता उनका सन्नाटापन लेंगे। लोग राम-वियोग में विकल पड़े हैं। सर-सरिता में जाकर स्नान करने का उत्साह उन्हें कहाँ? पर यह अर्थ हमारे आप के लिये है। गोस्वामीजी ऐसे भावुक महात्मा के निकट तो राम के वियोग में अयोध्या की भूमि ही विषाद-मग्न हो रही है; आठ-आठ आँसू रो रही है।

चित्रकूट में राम और भरत का जो मिलन हुआ है वह शील और शील का, स्नेह और स्नेह का, नीति और नीति का मिलन है। इस मिलन से संघटित उत्कर्ष की दिव्यप्रभा देखने योग्य है। झांकी अपूर्व है! "भायप भगति" से भरे भरत नंगे पाँव राम को मनाने जा रहे हैं। मार्ग में जहाँ सुनते हैं कि यहाँ पर राम-लक्ष्मण ने विश्राम किया था, उस स्थल को देख आँखों में आँसू भर लेते हैं।

राम बासथल बिटप बिलोके।
उर अनुराग रहत नहिं रोके॥

मार्ग में लोगों से पूछते जाते हैं कि राम किस वन में हैं। जो कहता है कि हम उन्हें सकुशल देखे आते हैं, वह उन्हें राम-लक्ष्मण के समान ही प्यारा लगता है। प्रिय सम्बन्धी आनन्द

के अनुभव की आशा देने वाला एक प्रकार से उस आनन्द का जगाने वाला है—'उद्दीपन' है। सब माताओं से पहले राम कैकेयी से मिले। क्यों? क्या उसे चिढ़ाने के लिए? कदापि नहीं। कैकेयी से प्रेमपूर्वक मिलने की सब से अधिक आवश्यकता थी। अपना महत्व या सहिष्णुता दिखाने के लिये नहीं, उसके परितोष के लिए। अपनी करनी पर कैकेयी को जो ग्लानि थी, वह राम ही के दूर किए दूर हो सकती थी और किसी के किए नहीं। उन्होंने माताओं से मिलते समय स्पष्ट कहा था—

अंब! ईस आधीन जग काहु न देइय दोषु।

कैकेयी को ग्लानि थी या नहीं, इस प्रकार के सन्देह का स्थान गोस्वामी जी ने नहीं रखा। कैकेयी की कठोरता आकस्मिक थी, स्वभावगत नहीं। स्वभावगत भी होती तो राम की सरलता और सुशीलता उसे कोमल करने में समर्थ थी।

लख सिय सहित सरल दोउ भाई।
कुटिल रानि पछतानि अघाई॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई।
महि न बीचु, बिधि मीचु न देई॥

जिस समाज के शील-संदर्भ की मनोहारिणी छटा को देख वन के कोल-किरात मुग्ध होकर सात्विक वृत्ति में लीन हो गये, उसका प्रभाव उसी समाज में रहने वाली कैकेई पर कैसे न पड़ता?

(क) भए सब साधु किरात किरातिनी।
राम दरस मिटि गई कलुषाई॥

(ख)

कोल किरात भिल्ल बनवासी। मधु शुचि सुन्दर स्वादु सुधासी॥
भरि भरि परन पुटी रुचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी॥
सबहिं देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद-भेद गुन नामा॥
देहिं लोग बहु, मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥

और सबसे पुलकित होकर कहते हैं—

तुम्ह प्रिय पाहुन बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥
देब कहा हम तुम्हहि गोसाँई। ईंधन पात किरात मिताई॥
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहि न आसन बसन चोराई॥
हम जड़ जीव जीवधनघाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघुनन्दन-दरस प्रभाऊ॥

उस पुण्य-समाज के प्रभाव से चित्रकूट की रमणीयता में पवित्रता भी मिल गई। उस समाज के भीतर नीति, स्नेह, शील, विनय, त्याग आदि के संघर्ष से जो धर्मज्योति फूटी, उससे आस-पास का सारा प्रदेश जगमगा उठा। उसकी मधुर स्मृति से आज भी वहाँ की वनस्थली परम पवित्र है। चित्रकूट की उस सभा की कार्यवाही क्या थी, धर्म के एक-एक अंग की पूर्ण और मनोहर अभिव्यक्ति थी। रामचरित-मानस में वह सभा एक आध्यात्मिक घटना है। धर्म के इतने स्वरूपों की एक साथ योजना, हृदय की इतनी उदात्त वृत्तियों की एक साथ उद्भावना, तुलसी के ही विशाल 'मानस' में सँभव थी। यह संभावना उस समाज के भीतर बहुत से भिन्न भिन्न वर्गों के समावेश द्वारा

संघटित की गई है। राजा और प्रजा, गुरु और शिष्य, भाई और भाई, माता और पुत्र, पिता और पुत्री, श्वशुर और जामातृ, सास और बहू, क्षत्रिय और ब्राह्मण, ब्राह्मण और शूद्र, सभ्य और असभ्य के परस्पर व्यवहारों का उपस्थित प्रसंग के धर्म-गांभीर्य और भावोत्कर्ष के कारण अत्यन्त मनोहर रूप प्रस्फुटित हुआ। धर्म के उस स्वरूप को देख सब मोहित हो गये—क्या नागरिक, क्या ग्रामीण और क्या जंगली। भारतीय शिष्टता और सभ्यता का चित्र यदि देखना हो, तो इस राज-समाज में देखिए। कैसी परिष्कृत भाषा में कैसी प्रवचन-पटुता के साथ प्रस्ताव उपस्थित होते हैं; किस गंभीरता और शिष्टता के साथ बात का उत्तर दिया जाता है, छोटे-बड़े की मर्यादा का किस सरसता के साथ पालन होता है। सब की इच्छा है कि राम अयोध्या को लौटें; पर उनके स्थान पर भरत वन को जायँ, यह इच्छा भरत को छोड़ शायद ही और किसी के मन में हो। अपनी प्रबल इच्छाओं को लिए हुए लोग सभा में बैठते हैं; पर वहाँ बैठते ही धर्म के स्थिर और गंभीर स्वरूप के सामने उनकी व्यक्तिगत इच्छाओं का कहीं पता नहीं रह जाता। राजा के सत्यपालन से जो गौरव राजा और प्रजा दोनों को प्राप्त होता दिखाई दे रहा है, उसे खंडित देखना वे नहीं चाहते। जनक, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि धर्मतत्त्व के पारदर्शी जो कुछ निश्चय कर दें, उसे वे कलेजे पर पत्थर रख कर मानने को तैयार हो जाते हैं।

× × × ×

कवि की पूर्ण भावुकता इसमें है कि वह प्रत्येक मानव-स्थिति में अपने को डाल कर उसके अनुरूप भाव का अनुभव करे। इस शक्ति की परीक्षा का रामचरितमानस से बढ़ कर विस्तृत क्षेत्र और कहाँ मिल सकता है? जीवन-स्थिति के इतने भेद और कहाँ दिखाई पड़ते हैं? इस क्षेत्र में जो कवि सर्वत्र पूरा उतरता दिखाई पड़ता है, उसकी भावुकता को और कोई नहीं पहुँच सकता। जो केवल दाम्पत्य-रति ही में अपनी भावुकता प्रकट कर सकें, या वीरोत्साह ही का अच्छा चित्रण कर सकें, वे पूर्ण भावुक नहीं कहे जा सकते। पूर्ण भावुक वे ही हैं, जो जीवन की प्रत्येक स्थिति के मर्मस्पर्शी अंश का साक्षात्कार कर सकें और उसे श्रोता या पाठक के सम्मुख अपनी शब्द-शक्ति द्वारा प्रत्यक्ष कर सकें। हिन्दी के कवियों में इस प्रकार की सर्वाङ्ग-पूर्ण भावुकता हमारे गोस्वामी जी में ही है जिसके प्रभाव से रामचरितमानस उत्तरी भारत की सारी जनता के गले का हार हो रहा है। वात्सल्य भाव का अनुभव करके पाठक तुरन्त बालक राम-लक्ष्मण के प्रवास का उत्साहपूर्ण जीवन देखते हैं, जिसके भीतर आत्मावलंबन का विकास होता है। फिर आचार्य विषयक रति का स्वरूप देखते हुए वे जनकपुर में जाकर सीताराम में परम पवित्र दाम्पत्य भाव के दर्शन करते हैं। इसके उपरान्त अयोध्या-त्याग के करुण दृश्य के भीतर भाग्य की अस्थिरता का कटु स्वरूप सामने आता है। तदनन्तर पथिक-वेशधारी राम-जानकी के साथ-साथ चल कर पाठक ग्रामीण स्त्री-पुरुषों के

उस विशुद्ध सात्त्विक प्रेम का अनुभव करते हैं, जिसे हम दाम्पत्य, वात्सल्य आदि कोई विशेषण नहीं दे सकते, पर जो मनुष्यमात्र में स्वाभाविक है।

रमणीय वन-पर्वत के बीच एक सुकुमारी राजवधू को साथ लिए दो वीर आत्मावलंबी राजकुमारों को विपत्ति के दिनों को सुख के दिनों में परिवर्तन करते पाकर वे "वीरभोग्या वसुन्धरा" की सत्यता हृदयंगम करते हैं। सीताहरण पर विप्रलंभ-शृङ्गार का माधुर्य देख कर पाठक फिर लंकादहन के अद्भुत, भयानक और बीभत्स दृश्य का निरीक्षण करते हुए राम-रावण युद्ध के रौद्र और युद्ध-वीर (रस) तक पहुँचते हैं। शांत रस का पुट तो बीच बीच में बराबर मिलता ही है। हास्य रस का पूर्ण समावेश रामचरितमानस के भीतर न करके नारदमोह के प्रसंग में उन्होंने किया है। इस प्रकार काव्य के गूढ़ और उच्च उद्देश को समझने वाले, मानव-जीवन के सुख और दुःख दोनों पक्षों के नाना रूपों में मर्मस्पर्शी चित्रण को देख कर गोस्वामीजी के महत्व पर मुग्ध होते हैं; और स्थूल बहिरंग दृष्टि रखने वाले भी लक्षण-ग्रन्थों में गिनाए हुए नवरसों और अलंकारों पर अपना आह्लाद प्रकट करते हैं।

यहाँ पर कहा जा चुका है कि गोस्वामी जी मनुष्य-जीवन की बहुत अधिक परिस्थितियों का जो सन्निवेश कर सके, वह रामचरित की विशेषता के कारण। इतने अधिक प्रकार की मानव-दशाओं का सन्निवेश आप-से-आप हो गया। ठीक है,

पर उन सब दशाओं का यथातथ्य चित्रण बिना हृदय की विशालता, भावप्रसार की शक्ति, मर्मस्पर्शी स्वरूपों की उद्भावना और शब्द-शक्ति की सिद्धि के नहीं हो सकता। मानव-प्रकृति के जितने अधिक रूपों के साथ गोस्वामीजी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य हम देखते हैं, उतना अधिक हिन्दी भाषा के और किसी कवि के हृदय का नहीं। यदि कहीं सौन्दर्य्य है तो प्रफुल्लता, शक्ति है तो प्रणति, शील है तो हर्षपुलक, गुण है तो आदर, पाप है तो घृणा, अत्याचार है तो क्रोध, अलौकिकता है तो विस्मय, पाखंड है तो कुढ़न, शोक है तो करुणा, आनन्दोत्सव है तो उल्लास, उपकार है तो कृतज्ञता, महत्व है तो दीनता, तुलसीदास जी के हृदय में बिंब-प्रतिबिंब भाव से विद्यमान है।

प्रश्न

१—कवि की भावुकता का पता कैसे चल सकता है?

२—कैकेयी की कठोरता किस प्रकार की थी?

३—चित्रकूट की सभा धर्म के एक-एक अंग की पूर्ण और मनोहर अभिव्यक्ति क्यों थी?

४—कवि की पूर्ण भावुकता किस बात में है?

५—तुम पूर्ण भावुक किस कवि को कहोगे और क्यों?

अभ्यास

१—श्री तुलसीदास जी की भावुकता के कुछ उदाहरण दो।

२—अन्य किसी कवि की भावुकता सम्बन्धिनी कोई कविता सुनाओ।
३—आयप-भगति, ओहत और स्वभावगत का अर्थ बताओ।

पाठ की सहायता

सर्व भूत व्यापिनी = जो सब प्राणियों तक पहुँच सके। वीरभोग्या वसुन्धरा = पृथ्वी पर वीरों का ही अधिकार होता है। विप्रलंभ शृंगार = वियोग शृंगार। स्थूल बहिरंग दृष्टि वाले = जो लोग भावों की सूक्ष्मता तक नहीं पहुँच पाते। प्रणति = नम्रता।

२६—एक ग्रामीण

[लेखक श्री भवानीभीख त्रिपाठी 'दिव्य' हिन्दी-अध्यापक गवर्नमेंट नार्मल स्कूल फैज़ाबाद ने इस कविता में एक ग्रामीण के मुख से सब-प्रकार के अभावों के मध्य भी कुछ सुख-सुविधाओं का वर्णन कराया है।

बाल कविता-माला में इनकी बालकोपयोगी रचनाएँ पढ़ो]

ग्रामों के रहने वाले हम,
नगरों की बातें क्या जानें?
हम पले प्रकृति के पलने में,
छल-बल की घातें क्या जानें? १।

तिनकों के झोंपड़े हमारे,
पक्के नहीं मकान।
चिड़ियों की ही भाँति,
किया करते हम कलरव-गान। २।

धन के नाम दिया ईश्वर ने,
हमें स्वच्छ जल-वायु।
सूर्य-चन्द्र के शुभ प्रकाश में,
बनते हम दीर्घायु। ३।

खेत, हमारे पार्क,
अजायब घर ये बीहड़ बन हैं।
इनमें ही हम घूम घूम,
बहलाते अपना मन हैं। ४।

दिये प्रकृति ने तीन डाक्टर,
हमको बड़े महान—
पवन, प्रकाश और जल
रखते सदा हमारा ध्यान। ५।

इनको फीस नहीं देते हम,
काम मुफ्त ये करते।
चीड़ फाड़-औषध के बिना,
सभी रोगों को हरते। ६।

प्रेमाकुल हो गायों का,
बछड़ों के लिए रँभाना।
उछल-उछल कर बछड़ों का,
माताओं के ढिग जाना। ७।

प्रातः—सायं पक्षिवर्ग का,
मनहर कल-रव गान।
मोरों का केका-रव सुन्दर,
उनका नृत्य-विधान। ८।

बागों में काली कोयल की,
कू-कू-कू-कू की रट।
नारि-वृन्द का जलाशयों से
लेकर चलना जल-घट। ९।

मधुर गान के संग संग,
चक्की चलना घर-घर में।
सुधा डालना पिक का,
पी-पी करके कर्ण-कुहर में। १०।

गीत निरौनी का सुन्दर,
सुख कर सोहर का गाना।
बिरहे की लय में चरवाहों का
तन्मय हो जाना। ११

सन्ध्या-समय कृषक-श्रमिकों का,
निज-निज गृह में आता।
और बाल-गोपाल संग,
मिलकर आनन्द मनाता। १० ।

कहाँ सुलभ ये नागरिकों को,
सुर भी इन्हें सिहाते।
इनके आगे नाच-सिनेमा,
सब फीके पड़ जाते। ११ ।

हमें अभीष्ट नहीं हैं,
नगरों के आमोद प्रमोद।
सब कुछ गाँवों में देती है,
हमें प्रकृति की गोद। १२ ।

प्रश्न

१—ग्रामीणों के मकान कैसे होते हैं ?

२—कृषक 'पार्क' और 'अजायबघर' का काम किससे लेते हैं ?

३—ग्रामीणों को प्रकृति ने कौन-कौन से तीन डाक्टर दिये हैं ? वे किस प्रकार रोगों को हरते हैं ?

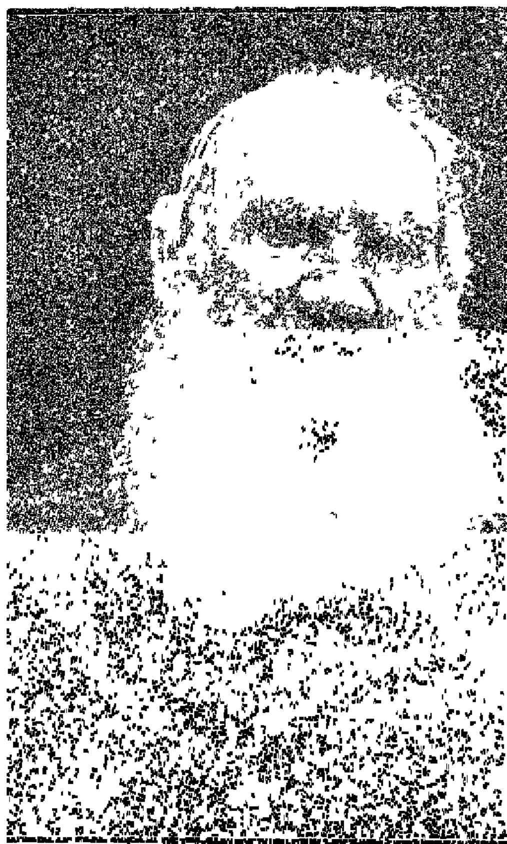
४—नागरिकों को गाँवों के कौन-कौन से सुख सुलभ नहीं हैं ?

अभ्यास

१—ग्रामों की भाँति नगरों के सुख वर्णन करो।

२—किसी ग्राम के समीप का सायंकालीन दृश्य वर्णन करो।





महात्मा टालस्टाय

३—नगरों के मनोरञ्जक गृहों का अपना अनुभव बताओ।

४—केका-रव और नृत्य-विधान के अर्थ बताओ।

५—८ वें और ९ वें छंदों में आये हुए समस्त पदों के विग्रह-पूर्वक समास बताओ।

आदेश

ग्रामीणों के अभाव ढूँढ़ कर उनकी तालिका बनाओ और उन्हें दूर करने के उपाय सोचो।

—:o:—

२०—महात्मा टालस्टाय

[श्री रामनारायण मिश्र जी का हिन्दी के वर्तमान उन्नायकों में प्रमुख स्थान है। आपको लोग दूसरे मालवीय कहने लगे हैं। आपके लिखे हुए महात्मा टालस्टाय के जीवन चरित में प्राचीन आर्यों के सिद्धान्तों की कार्य रूप में परिणति, टाल्स्टाय का भारतीयों के प्रति-प्रेम और पीड़ितों की पीड़ा निवारणार्थ उनकी आकुलता देखो]

टालस्टाय रूस देश के निवासी थे। पर वे सारे संसार के लिये उत्पन्न हुये थे। अत्यन्त देश-भक्त होने पर भी उनका प्रेम विश्वजनीन था। इस पृथ्वी पर जितने देश हैं और जहाँ जहाँ की पद-दलित जनता दासत्व से छुटकारा पाकर स्वतंत्रता प्राप्त करने की चेष्टा कर रही है, उन सबसे टालस्टाय की सहानुभूति

रहती थी। उनका ध्यान मनुष्य की उन्नति के केवल एक ही अंग पर नहीं रहता था। वे एक साथ धर्म-निरीक्षक, समाज-संशोधक, राजनितिक योद्धा और तत्ववेत्ता थे। अपने विचारों को उपन्यास और अन्य प्रकार के निबन्धों द्वारा प्रकाशित करते थे और उन विचारों पर स्वयं भी चलते थे। ऐसा करने में उनको अनेक कष्ट हुये। उनके कुटुम्बी उनसे अप्रसन्न रहने लगे। राजा का क्रोध भी कभी-कभी उचित सीमा का उल्लङ्घन कर जाता था; पर दृढ़ प्रतिज्ञ टालस्टाय अपने सिद्धान्तों से विचलित न होते थे। ऐसे महानुभाव का जीवन-वृत्तांत मनुष्य-मात्र के लिये शिक्षा-प्रद होगा, विशेष-कर हमारे देश के लिये, जो प्रायः उन्हीं दुःखों से पीड़ित है, जिनके दूर करने के लिये यह महात्मा अपना तन-मन-धन लगाते थे।

टालस्टाय का जन्म संवत् १८८५ विक्रमी में रूस की प्राचीन राजधानी मास्को से प्रायः साठ कोस पर 'यासन्यापोलयाना' नामक स्थान में हुआ था। जब इनकी अवस्था तीन वर्ष की थी तभी इनकी माता का और नव वर्ष की अवस्था में इनके पिता का देहांत हो गया। इनके कुटुम्ब के पुरुष सेना-विभाग में सरकारी नौकरी करते थे और उनमें से अनेक विख्यात योद्धा भी थे। पिता के मरने पर इनकी चाची ने इनको पाला। यह स्त्री रात-दिन संसार के सुख-भोग में लीन रहती थी। प्रति दिन उसके घर में दावतें हुआ करती थीं, खेल-तमाशे हुआ करते थे। काजान नगर में, जहाँ वह रहती थी, प्रति दिन भोज हुआ करते थे। टालस्टाय

बाल्यावस्था में इनमें शरीक होते थे और हँसी-दिल्लगी देखते थे। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में इनका नाम उस नगर के विश्व-विद्यालय में लिखवाया गया। पढ़ने में इनका मन नहीं लगता था। इन्होंने विश्व-विद्यालय में भी जाकर आमोद-प्रमोद के उपाय सोचे और अनेक विद्यार्थियों को अपना साथी बनाया।

अब इनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। बाप-दादे की जायदाद काफी थी। जमींदार थे और समझते थे कि चिन्ता किस बात की है। पढ़ना-लिखना रुपया कमाने के लिये होता है। रुपयों का अभाव है ही नहीं। प्रतिष्ठा भी धन से ही होती है। इसलिए सोचा कि चल कर अपनी जमींदारी में रहें। पढ़ना-लिखना छोड़कर जमींदार हुये। कभी-कभी कास्तकारों की अवस्था देखकर दया आती; परन्तु खेल-कूद से फुरसत कहाँ! कभी शिकार को निकल गये, कभी महीनों जुआँ ही होता रहा। नाच देखना विशेष प्रिय था। फल यह हुआ कि आमदनी से ज्यादा खर्च होने लगा। ऋण बढ़ गया, घर पर रहना कठिन हो गया। काफ़ पर्वत पर भागे और वहाँ एकान्त में एक कुटी बना कर रहने लगे। तेईस वर्ष की अवस्था में सेना-विभाग में नौकरी कर ली और कुछ लिखना-पढ़ना भी आरम्भ किया। इसी समय क्रीमिया का युद्ध आरम्भ हुआ। उन्होंने अपने देश की ओर से बिना वेतन लिये स्वेच्छा से सैनिक होकर लड़ना आरम्भ किया। लड़ने में इतनी दक्षता दिखलाई कि सेवैस्टोपोल के पहाड़ी गढ़ की सेना के सेनापति हो गये। इसी स्थान पर इन्होंने सेवैस्टोपोल की लड़ाई की

कहानियाँ लिखीं। इन कहानियों का विलक्षण प्रभाव पड़ा। राजा की आज्ञा हुई कि इनका लड़ाई से छुटकारा करके इनसे प्रार्थना की जाय कि ये युद्ध का एक बृहत् वृत्तांत लिखें। इस बीच में ये रूस की राजधानी पेट्रोग्रेड पहुँचे। वहाँ इनका अत्यन्त मनोहर स्वागत हुआ। सब प्रकार के स्त्री-पुरुष इनके दर्शनों को आये। नगर में बड़ा जोश था। जिधर देखिये, इन्हीं की चर्चा थी। कहाँ तो एकान्त वास करने की इच्छा थी; कहाँ देश के नेता हो गये।

थोड़े दिनों बाद टालस्टाय ने फ्रांस देश के विख्यात लेखक, सुधारक, और तत्ववेत्ता रूसो के ग्रंथों का अवलोकन आरम्भ किया। रूसो के ग्रंथ विलक्षण हैं। इनमें स्वतन्त्रता और उन्नति के मूलमन्त्र लिखे हैं। इनमें शिक्षा के प्रचार का उपदेश है। टालस्टाय के जीवन के आदर्श को इन ग्रंथों ने बदल दिया। टालस्टाय ने जो पुस्तकें लिखी हैं, उन पर रूसो के उपदेशों का स्पष्ट प्रभाव मालूम होता है।

इन दिनों रूस देश में गुलामी की प्रथा थी। जमींदार काश्तकारों से बेगार लेते थे। काम के बदले में कुछ वेतन नहीं देते थे। इस दुर्दशा को टालस्टाय ने देश के लिये श्रेयस्कर नहीं समझा। उन्होंने इसी विषय पर उपन्यास लिखने आरम्भ किये। स्वयं अपनी जमींदारी में कृषिकारों से सुन्दर व्यवहार आरम्भ किया। उनके लिये पाठशालायें खोलीं और स्वयं उन्हें इञ्जील का गाना, इतिहास इत्यादि पढ़ाना आरम्भ किया। एक पाठशाला में सफलता होने पर कई और पाठशालायें खोलीं। चारों तरफ

से लोगों ने विरोध करना आरम्भ किया। सब कहने लगे कि ये लोग पढ़ जायँगे तो खेती कौन करेगा? मजदूर कहाँ से मिलेंगे? टाल्स्टाय का मत था कि प्रत्येक बालक, चाहे वह किसी अवस्था में उत्पन्न हुआ हो, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी है। राजा और धनाढ्य लोगों का कर्तव्य है कि वे अपनी जाति के बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध करें। मनुष्य-मात्र के लिये जैसे नग्न अवस्था को ढँकने के लिये वस्त्र की आवश्यकता है, इसी प्रकार अपनी अज्ञानता को दूर करने के लिये विद्या-प्राप्त करने की आवश्यकता है। परन्तु अपने मत के प्रचार में वे अकेले ही थे। लाचार होकर उनको अपने खोले हुये स्कूल बन्द करने पड़े। परन्तु उनका यह मत दृढ़ होता गया कि उच्च श्रेणी के धनाढ्य पुरुष उन लोगों की ओर अपना कोई कर्तव्य नहीं समझते जो निर्धन होने के कारण उनके आधीन हैं। इस समय उन्होंने जो उपन्यास लिखे, वे इसी मत का प्रतिपादन करते हैं। इन ग्रंथों का बड़ा आदर हुआ और यूरोप की अनेक भाषाओं में उनके अनुवाद हुये। परन्तु इन ग्रंथों के कारण उनको राजा और जमींदारों की तरफ से बहुत कष्ट पहुँचाये गये। उनकी पुस्तकों का छपना बन्द कर दिया गया। उनके मित्रों को दंड दिया गया, जिसमें उनके साथ देने वाले कम हो जायँ। उनकी चिट्ठियाँ चोरी से पढ़ी जाने लगीं और उनके पीछे सरकारी जासूस छोड़े जाने लगे। इसके पूर्व ही उनका विवाह हो चुका था। अब उनके मन में समायी कि धन और जायदाद एक व्याधि है। चारों तरफ लोग दुःखी हैं, सैकड़ों को

पुरुष-बच्चे भूखों मरते हैं। ऐसी दशा में हमको यह अधिकार नहीं कि हम तो धनवान् हों और ऐसा भोजन करें ऐसे वस्त्र पहने कि जो मनुष्य जीवन के लिये व्यसन का सूचक हो और हमारे चारों ओर ऐसे लोग हों कि जिनको शरीर-रक्षा के निमित्त आवश्यक अन्न-वस्त्र भी न मिले। इसी विचार से उन्होंने यह ठाना कि अपनी सब सम्पत्ति सर्व साधारण को बाँट दें। यह सुन कर उनकी स्त्री और बच्चे बड़े घबड़ाये और उन्होंने न्यायालय की शरण लेने का विचार किया। इससे टालस्टाय दब गये और जो कुछ उनके पास था अपने कुटुम्बियों को दे, आप निर्धन की नाई रहने लगे। एक कुटी बना ली और स्वयं खेती करने लगे। मांस-भोजन परित्याग किया। जो मिल जाता वह खा लेते और पहन लेते थे। किसी प्रकार का व्यसन नहीं रखा। खेती करना और पुस्तकें लिखना ही इनका काम था।

संवत् १९३७ में रूस देश की मनुष्य गणना हुई, उसमें इनको भी कुछ काम मिला। इस काम के करने में इन्होंने सर्व-साधारण को सामाजिक और आर्थिक अवस्था की खूब जाँच-पड़ताल की। इस समय की उनकी जो पुस्तकें हैं, उनमें सर्व-साधारण की अवस्था का बहुत अच्छा वर्णन है। उनकी पुस्तकें प्रायः कहानियों के रूप में होती थीं। बहुत-सी कहानियाँ उन्होंने शराब की बुराइयों के वर्णन में लिखीं। इसके कुछ वर्षों के अनन्तर रूस देश में बड़ा अकाल पड़ा। उस समय टालस्टाय की दीन-वत्सलता को जिन लोगों ने अपनी आँखों से देखा था उनका लिखा हुआ

वर्णन पढ़कर महान् पुरुषों के उच्च लक्षणों का अनुभव होता है। टालस्टाय और उनके कुटुम्बी मिलकर दीनों को अपने हाथ से भोजन खिलाते और वस्त्र पहनाते थे। अपनी जमींदारी की सारी आय उन्होंने ग़रीबों को अर्पण करनी आरम्भ की। स्वयं भी वही भोजन करते, जो कंगालों को खिलाते। टालस्टाय के धार्मिक भाव का उज्ज्वल रूप में प्रादुर्भाव तब होता था जब वे दुखित, पीड़ित और पद-दलित लोगों को देखते थे। उस समय उनके चित्त में ऐसे लोगों के लिये दया, और जिनके कारण संसार में दुःख, पीड़ा और अन्याय फैलता है, उनके लिये अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता था। ऐसे धार्मिक भावों का वर्णन करने में टालस्टाय की लेखनी बड़ी प्रभावशालिनी हो जाती थी। उनके वाक्य अद्भुत आदर्शों का परिचय देते थे।

अन्त में टालस्टाय के चित्त में वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने की इच्छा हुई। परन्तु इसमें कई कठिनाइयाँ प्रतीत हुईं। घरवालों का झगड़ा, लोगों का प्रार्थना करना और समझाना कि घर बैठे ही संसार त्यागा जा सकता है, ऐसी जल्दी क्या है, इसकी आवश्यकता क्या है, इत्यादि बातें उनके मार्ग में बाधक थीं। उस समय एक पत्र उन्होंने अपनी स्त्री के नाम लिखा था। वह अब प्रकाशित किया गया है। उसमें उन्होंने अन्य बातों के अतिरिक्त यह वाक्य लिखा है, "मुख्य बात यह है कि प्राचीन आर्यों की नाईं जो साठ वर्ष की अवस्था के निकट जंगल में चले जाते थे और सच्चे धार्मिक पुरुषों के समान अपना अन्तिम समय ईश्वर की

आराधना में बिताते थे, न कि खेल और गप्पों में, अपनी अस्सी वर्ष की आयु में मेरी भी यह प्रबल इच्छा है कि मुझे शांति प्राप्त हो, एकान्त मिले और मेरे जीवन के कार्य तथा मेरे विश्वास में एकता हो।

कई वर्षों के कोलाहल के बाद अन्त में उन्होंने घर छोड़ ही दिया। बयासी वर्ष की अवस्था में पीठ पर एक गठरी डाली और जङ्गल की राह ली। गठरी में दो-तीन आवश्यक चीजें थीं। परन्तु घर छोड़े थोड़े ही दिन हुए थे कि एक सराय में उनको ज्वर आया। यह समाचार पाते ही उनके घर के लोग उनके पास पहुँचे। घर वालों की ओर देखकर उन्होंने कहा—'संसार में अनेक दुःखी पड़े हैं। उनके पास तुम लोग क्यों नहीं जाते और उनसे सहानुभूति क्यों नहीं प्रकट करते?' ये ही उनके अन्तिम वाक्य थे। संसार भर में मृत्यु का समाचार पहुँचा। जिस स्थान का लोग नाम भी नहीं जानते थे, वहाँ सहस्रों आदमियों की भीड़ इनके दर्शनों को पहुँचने लगी। तार पर तार आने-जाने लगे। इस प्रकार संवत् १९६७ की शरद्-ऋतु के अन्त में संसार का एक विलक्षण पुरुष मनुष्य के कर्तव्यों का अद्भुत उदाहरण हम लोगों को देकर चल बसा। इनका जीवन-चरित्र सिद्ध करता है कि प्राचीन आर्यों के सिद्धांत इस समय में भी कार्य में परिणत हो सकते हैं। टालस्टाय को आर्य सिद्धान्तों से प्रेम था। वे गीता और उपनिषदों का पाठ किया करते थे। आर्य-ग्रंथों के पढ़ने का उपदेश संसार-मात्र को दिया करते थे।

उन्हें भारत-निवासियों से प्रेम था। उनके दुःख से दुखी और उनके सुख से सुखी होते थे। उन्हें ईसाई धर्म में विश्वास नहीं था। उनका सिद्धांत था कि हमारा दैनिक जीवन ऐसा होना चाहिये कि हम लोग सर्वदा ईश्वर की इच्छा के अनुसार चलें। बुरे आदमियों का सामना नहीं करना चाहिये; बल्कि उन्हें बरदाश्त करना चाहिये।

प्रश्न

१—महात्मा टालस्टाय के सिद्धान्तों के विषय में तुम क्या जानते हो ?

२—टालस्टाय के जीवन में किस प्रकार परिवर्तन हुआ ? उनके पहिले और बाद के जीवन की तुलना करो।

३—टालस्टाय ने अपने देश की दशा को सुधारने के लिए क्या उपाय किये ?

४—महात्मा टालस्टाय के मन में वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने की इच्छा क्यों उत्पन्न हुई ? आरम्भ में उसमें कौन-कौन सी बाधाएँ पड़ीं ?

५—अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में टालस्टाय को क्या-क्या कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं ?

६—टालस्टाय के जीवन-चरित्र से यह किस प्रकार सिद्ध होता है कि प्राचीन आर्यों के सिद्धान्त इस समय भी कार्य रूप में परिणत हो सकते हैं ?

७—टालस्टाय को भारतवासियों से प्रेम क्यों था ?

अभ्यास

१—अर्थ बताओ और अपने वाक्यों में प्रयोग करो—

श्रेयस्कर, विलक्षण, संशोधन, विश्व।

२—वाक्य-विश्लेषण करो—

जब टालस्टाय दुःखित, पीड़ित और पद-दलित व्यक्तियों को देखते थे तो उनका धार्मिक-भाव अपने उज्ज्वल रूप में निखर आता था।

३—महात्मा टालस्टाय का संक्षिप्त जीवन चरित लिखो।

४—टालस्टाय के सैनिक जीवन का वृत्तान्त लिखो।

५—विश्वजनीन, प्रादुर्भाव, व्यसन और श्रेयस्कर को अर्थ सहित अपने शब्द कोष में लिख लो।

पाठ की सहायता

व्यसन=शौक, विषयानुरक्ति, ऐसी पक्की टेव जो छूटती नहीं, लत जैसे मोहन को समाचार पत्र पढ़ने का व्यसन है। श्याम को सिनेमा देखने का व्यसन है। इस प्रकार व्यसन अच्छा भी होता है; बुरा भी।

निकृष्ट अर्थ प्रकट करने के लिए व्यसन के पूर्व दुर उपसर्ग लगाते हैं यथा दुर्व्यसन।

आदेश

कुछ ऐसे वाक्य ढूंढो जिनमें व्यसन का प्रयोग मांगलिक और कुछ में अमांगलिक हो।

२१—रत्नाकर-रत्नावली

[आधुनिक काल के ब्रजभाषा कवियों में श्री जगन्नाथदास रत्नाकर का स्थान सब से ऊँचा है। इन्होंने केवल ब्रजभाषा में कविता लिखी। इनके 'गंगावतरण' 'उद्धवशतक' आदि ग्रंथों की बहुत प्रशंसा है। इन्होंने 'बिहारी-रत्नाकर' नाम से बिहारी-सतसई की बहुत सुन्दर टीका की है। नीचे दिए हुए कवित्त इनके 'उद्धवशतक' नामक ग्रंथ से उद्धृत किए गए हैं। आपका जन्म सं० १९२३ तथा परलोकवास सं० १९८९ में हुआ।]

कृष्ण का वचन उद्धव से

नन्द और जसोमति के प्रेम पगे पालन की,
लाड़ भरे लालन की लालच लगावती।
कहै रतनाकर सुधाकर प्रभा सौं मढ़ी,
मंजु मृग नैननि के गुन गन गावतीं।
जमुना कछारनि की रंग-रस-रारनि की,
बिपिन-बिहारनि की हौंस हुमसावती।
सुधि ब्रज बासिनि दिवैया सुख रासिन की,
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती ॥१॥

प्रेम-नेम निफल निवारि उर-अन्तर तैं,
ब्रह्म ज्ञान आनँद-निधान भरि लैहैं हम।
कहैं रतनाकर सुधाकर-मुखिन ध्यान,
आँसुनि सौं धोइ, जोति जोइ जरि लैहैं हम।

आवौ एक बारि धरि गोकुल गली की धूरि,
तब इहिं नीति की प्रतीति धारि लैहैं हम ।
मन सौं, करेजे सौं, स्रवन-सिर-आँखिनि सौं
ऊद्धव तिहारी सीख भीख कर लैहैं हम ॥२॥

गोकुल पहुँचने पर उद्धव की दशा

दुःख-सुख ग्रीषम औ सिसिर न ब्यापैं जिन्हैं,
छापैं छाप एकै हिये ब्रह्म-ज्ञान-साने मैं ;
कहै रतनाकर गम्भीर सोई ऊद्धव कौ,
धीर उधराऩ्यौ आनि ब्रज के सिवाने मैं ;
औरै मुख-रंग भयौ, सिथिलित अंग भयौ,
बैन दबि दंग भयौ, गर गरुआने मैं
पुलकि पसीजि पास चाँपि मुरझाने काँपि,
जानैं कौन बहति बयारि बरसाने मैं ॥३॥

गोपियों के बचन उद्धव से

ऊधौ कहौ सूधौ सौ सनेस पहिलैं तौ यह,
प्यारे परदेस तैं, कबै धौं पग पारिहैं ?
कहै रतनाकर, तिहारी परि बातनि मैं,
मीड़ि हम कब लौं करेजौ, मन मारिहैं ?
लाइ लाइ पाती, छाती कब लौं सिरैहैं हाय,
धरि-धरि ध्यान, धीर कब लगि धारिहैं ?

बैननि उचारि हैं उराहनौ कबै धौं सबै,
स्याम कौ सलोनौ रूप नैननि निहारि हैं ॥४॥

मथुरा से लौटने पर उद्धव की दशा

प्रेम-मद-छाके पद परत कहाँ के कहाँ ?
थाके अंग, नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यौं आवत चकात ऊधौ,
मानौं सुधियात कोऊ भावना भुलाई है।
धारन धरा पै न उदार अति आदर सौं,
सारत बँहोलिनि जो आँस-अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ,
एक कर बंसी बर, राधिका पठाई है ॥५॥

प्रश्न

१—कृष्ण ने उद्धव से क्या कहा ?

२—कृष्ण का उद्धव को गोकुल भेजने में क्या उद्देश्य था ?

३—गोकुल पहुँचने पर उद्धव की क्या दशा हुई ?

४—'धीर उधरान्यौं' का क्या अर्थ है ?

५—गोपियों के वचन उद्धव के प्रति क्या थे ?

अभ्यास

१—गोकुल पहुँचने पर उद्धव की जो दशा हुई उसको अपने शब्दों में वर्णन करो।

२—दूसरे छन्द का अर्थ लिखो।

३—निफल, स्रवन, सलोनो और आँस के तत्सम रूप लिखो।

४—इस पाठ में आये हुए मुहाविरे छाँटो, उनके अभिप्राय बताओ और अपने वाक्यों में प्रयोग करो।

५—मनहरण और रूप घनाक्षरी के लक्षण बताओ।

पाठ की सहायता

बिपिन-बिहारिन की हौंस=वन-विहार की अभिलाषा।

प्रेम-नेम...भरि लैहैं हम=हम अपने हृदय से निष्फल प्रेम नेम को हटा कर उसमें आनन्द-निधान ब्रह्म-ज्ञान भर लेंगी।

जोइ=देखकर।

छापैं छाप...साने मैं=जिस उद्धव के ब्रह्मज्ञान से परिपूर्ण हृदय में उस एक ही ब्रह्म की छाप है।

मींड़ि=मसल कर, हाथों से दबा कर।

पाती=पत्ती, पत्री, चिट्ठी।

मानौं...भुलाई है=मानों किसी भूली हुई भावना का स्मरण कर रहे हैं।

आरत=पोंछते हैं, ठीक करते हैं।

२२—दृढ़ता

"दृढ़ता से संसार में सुलभ होत सब काम।
दृढ़ता ही को प्रबल करि लंका जीतेहु राम।"

[इसी महान् मानवी गुण का वर्णन इस कविता में किया गया है। इसी की सहायता से मनुष्य जीवन-युद्ध में विजयी हो सकता है। लेखक स्वर्गीय पं० रामचरित उपाध्याय खड़ी बोली में कविता करने के दृढ़ समर्थक थे। 'रामचरित-चिन्तामणि' इनका लिखा हुआ एक उत्कृष्ट महाकाव्य है।]

धन्य वही है जिसे न रिपुओं में प्रतीति है,
रीति प्रीति है नहीं न उससे तनिक भीति है।
जिसको निज कर्त्तव्य याद रहता है हरदम,
उसका कब उत्साह भला हो सकता है कम।
हिम-मेघों ने रवि-कार्य में विघ्न नहीं क्या-क्या किया?
वे किंतु आप ही मर मिटे उसका क्या कुछ कर लिया ॥१॥

कर्मवीर बकवाद नहीं करता है खल से,
शांति सहित निज कार्य किया करता है बल से।
यद्यपि क्षुद्र-गण उसे बुरी बातें कहता है,
तो भी वह निज धर्म-मार्ग पर दृढ़ रहता है।
ज्यों श्वान भूँकते हैं खड़े हाथी जाता है चला।
क्या मशकों के हुंकार से खगपति डरता है भला ॥२॥

अपने बल से आप खड़ा जो हो सकता है,
वही मनुज निज कुल-कलंक को धो सकता है।
निज बल का विश्वास बना है जिसके मन में,
उसे सिद्धि सर्वत्र मिलेगी रण में, वन में।

क्यों अपद चतुष्पद सिंह भी राज-शब्द से युक्त है?
जो विक्रमशाली है सदा सभी दुःखों से मुक्त है॥३॥

धारा रुकती नहीं कभी नदियों की तब तक,
प्यारा उन्हें पयोधि नहीं मिलता है जब तक,
सुधा प्राप्त हो गयी नहीं देवों को जब तक,
वारिधि मथते चले गये वे थके न तब तक।

जो यज्ञ-कार्य आरंभ करके पीछे हट जायगा,
वह फिर कैसे कहिए भला कभी सिद्धियाँ पायगा॥४॥

दृढ़-प्रतिज्ञ क्या कभी विघ्न से डर सकते हैं?
यम का भी वे सदा सामना कर सकते हैं,
जो चलते हैं सदा पराये हित के मग में,
चुभ सकते हैं कभी न काँटे उनके पग में।

अति प्रबल पवन से भी जलद तब तक हट जाते नहीं।
जब तक सतृष्ण संसार को जलमय कर पाते नहीं॥५॥

दुःखानल में धीर जन्म भर जल सकता है,
पर अपने सिद्धांत से न वह टल सकता है।

प्यासा ही मर जाय किंतु जब तक जीता है,
स्वाती जल को छोड़ न कुछ चातक पीता है।
जलधि कभी बाँधा गया, मथा गया, सोखा गया,
गत मर्यादा भी कभी चलता क्या देखा गया ॥६॥
दृढ़-प्रतिज्ञ जो कार्य-सूत्र कर में धरता है,
करता है वह उसे, नहीं जब तक मरता है।
कह कर जो हट जाय वही अति कायर नर है,
जग में वह उपहास-पूर्ण अपयश का घर है।
शशी, समीरण, सूर्य भी करते कुछ विश्राम हैं।
शेष शीश पर ही धरा रहती आठों याम है ॥७॥
प्रण से हटना नहीं धीर नर को आता है,
यद्यपि उसके लिए बड़ा दुख वह पाता है।
बाहर हो गज-दंत नहीं मुख में फिर जाते,
कट कर के हैं कभी भले ही वे गिर जाते।
जावे अचला भी कभी सागर निर्मर्याद हो।
ध्रुव तारक चलता नहीं कितना ही अवसाद हो ॥८॥
विपुल विघ्न को दूर करेगा जो तेजस्वी,
होगा वह क्यों नहीं विश्व में शीघ्र यशस्वी ?
जिसकी दृढ़ता कभी नहीं घटने पाती है,
लक्ष्मी उसके अंक आप ही आ जाती है।
ट वस्तुओं को जला पावक हुआ पवित्र है।
हित पूजित होता नहीं जग भी बड़ा विचित्र है ॥९॥

जो दृढ़ हो निःस्वार्थ भलाई चाहे जग की,
क्यों न बने संसार धूलि फिर उसके पग की ?
जग-सेवक ही सेव्य जगत के बन जाते हैं,
चाहे हों वे नीच तदपि पूजा पाते हैं।
क्या चिंतामणि जड़ है नहीं, कामधेनु पशु है नहीं ?
पर उनके दर्शन के लिए उत्कंठित यह है मही ॥१०॥

प्रश्न

१—इस कविता के द्वारा कवि जगत् को क्या सन्देश देना चाहता है ?

२—ध्रुव के विषय में तुम क्या जानते हो ?

३—मात्रिक छन्द किसे कहते हैं ? 'दृढ़ता' शीर्षक कविता किस छन्द में लिखी गई है ? इसका क्या लक्षण है ?

४—कौन जगत का सेव्य बन जाता है ?

५—कहावतों की साहित्य मे क्या उपयोगिता है ? इस पाठ में कौन-कौन सी कहावतें आई हैं ?

अभ्यास

१—दृढ़ प्रतिज्ञ मनुष्य के लक्षण इस कविता में से ढूँढ़ कर लिखो।

२—सागर-मंथन की कथा सक्षेप में बताओ।

३—छठें पद में सागर के सम्बन्ध में तीन कथाओं की ओर संकेत किया गया है, उन्हें संक्षेप में लिखो।



श्रीमती महादेवी वर्मा

४—"जग-सेवक ही सेव्य जगत के बन जाते हैं"—इस कथन की पुष्टि में अपनी ओर से दो उदाहरण दो।

५—'दृढ़ता' पर एक छोटा-सा निबन्ध लिखो।

पाठ की सहायता

आठ सिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

—:※:—

२३—स्मृति-रेखाएँ

[आधुनिक स्त्री कवियों में सर्व श्रेष्ठ, सफल और ख्याति-प्राप्त निबन्ध लेखिका श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० लिखित इस पाठ में पर्वतीय कुलियों की दशा, उनके जीवन में दैन्य और विचित्रता का सुन्दर समन्वय देखो। आपकी कुछ रचनाएँ ये हैं :—

नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत, दीप-शिखा और अतीत के चल चित्र]

बादामी रंग के पुराने कागज के टुकड़े पर लिखी हुई रसीद उँगलियों में थामे हुए जब मैं कुलियों के चित्रगुप्त अर्थात् ठेकेदार की ओर से मुँह फेर कर बाहर बुझने से पहले जल उठने वाले दीपक जैसी सन्ध्या को देखने लगी तब उन्हें अपनी अधीनस्थ आत्माओं का लेखा-जोखा और अपनी महत्ता का वर्णन रोकना

पंडा ; कई बार खाँस-खाँस कर जब वृद्ध महोदय श्रोता की उदासीनता भंग न कर सके तब कुछ आगे की ओर झुके हुए दाहिने कान में मटमैला टूटे निब वाला कलम खोंस कर और टेढ़ी मेढ़ी उँगलियों में बिना ढक्कन वाली और पानी मिली हुई फीकी स्याही से भरी दावात यत्न से दबाकर धीरे-धीरे सीढ़ियों से नीचे उतर गए और उनके पीठ फेरते ही कितने ही कुली मेरे कमरे के सामने एकत्र होने लगे।

यह डोटियाल संज्ञाधारी जीव भी विचित्र हैं। नैपाल, भूटान आदि से जो कुली इस ओर आते हैं उनकी विशेषता का मापदण्ड बोझा उठाने की शक्तिमात्र है। उनमें प्रायः छोटा-सा छोटा कुली भी डेढ़-दो मन का बोझ उठा कर ऊँचे ऊँचे पहाड़ों की मीलों लम्बी चढ़ाई पार कर जाता है। पर रूप में यह सब शिव के बराती हैं—केवल वे कुरूप हैं दीन नहीं, और ये दीन अधिक हैं, कुरूप कम।

कोई टाट का सिला विचित्र पैजामा और फटे हुए काले खुरदरे कम्बल का गिलाफ जैसा कुरता गले में लटकाये भालू के समान घूम रहा है, कोई कोपीनधारी तार-तार फटा सूती कोट पहने, कमर में बोझ बाँधने की मोटी रस्सी लपेटे और रूखे खड़े बालों को खुजलाता हुआ सेही जैसा काँटेदार जन्तु जान पड़ता है। किसी के कठिन एँड़ी और ऐंठी फैली उँगलियों वाले पैर सड़क कूटने के दुर्मुठ से स्पर्धा करते हैं और किसी के, स्वरचित, मूँज की खुरदरी में सिकुड़ बँध कर पंजे की भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं।

कोई धूप में बैठकर कपड़ों में से जुयें बीनता हुआ वानर का स्मरण दिलाता है और कोई दुकानदार से माँग-जाँच कर मुख तथा हाथ-पैर में मले हुए तेल के कारण जल से बाहर निकले हुए जलजन्तु की तरह चमकता है। ये भी मनुष्य हैं, इसे हम अभ्यास वश ही समझते हैं—इनमें मनुष्य का रूप पाकर नहीं।

ऐसे विविध अद्भुत रूपों की भीड़ देखकर मेरी मौसी तो कोने में दुबक कर बैठ गई और भक्तिन बाहर देहली पर खड़ी होकर विस्मय की मुद्रा से उनका निरीक्षण-परीक्षण करने लगी, क्योंकि दैन्य और विचित्रता का ऐसा समन्वय तो हमारे गाँव मे भी नहीं मिलता। मैंने कुछ उदासीन भाव में कहा—"तुम जाओ, हमारा कुली जंगबहादुर है, उसी को भेज दो।"

मेरी बात समझकर उनमें परस्पर देखा देखी होने लगी—भीड़ में से कोई विशेष साहसी बोला—माई जी ई है जंगिया—मै इस नाम में जंगबहादुर को नहीं पहचान पायी।' अतः फिर कहा—

'जंगबहादुर को बुलाओ।'

वे विस्मित से एक दूसरे को धकियाने लगे। फिर एक व्यक्ति को आगे ठेलकर दूसरे ने कहा—'यई तो जंगिया बोलता है।' जिसे ढकेला था उसमें अपने कुली के उपयुक्त महत्ता का लेशमात्र न पाकर मैंने सन्देह से प्रश्न किया—'क्या नाम है तुम्हारा?'

उत्तर मिला—'जंगबहादुरसिंह।'

नाम ने नाम के आधार को ठीक से देखना आवश्यक कर दिया। पर्वतीय पथ और पत्थरों की चोट से टूटे हुए नाखून और चुटीली उँगलियों की बीच में ढाल बनी हुई मूँज की चप्पल मानो मनुष्य को पशु बनाकर भी खुर न देने वाले परमात्मा का उपहास कर रही थी। पाँव से दो बालिश्त ऊँचा और ऊनी-सूती पैबन्दों से बना हुआ पैजामा मनुष्य की लज्जाशीलता की विडम्बना जैसा लगता था। किसी से कभी मिले हुए पुराने कोट में, नीचे के मटमैले अस्तर की झाँकी देती हुई ऊपरी तह तार-तार फटकर झालरदार हो उठी थी और अब अपने पहनने वाले को एक झबरे जन्तु की भूमिका में उपस्थित करती थी। अस्पष्ट रंग और अनिश्चित रूपवाली दोपलीया टोपी के छेदों से रूखे बाल जहाँ तहाँ झाँककर मैले पानी और उसके बीच-बीच में झाँकते हुए सेवार की स्मृति करा देते थे।

घनी भौंहों के नीचे मुख चौड़ा और नाक कुछ गोल हो गई थी। हँसी से निरन्तर खुले हुए ओंठों के कोने कान तक फैल कर गाल और कान के अन्तर को छिपा देते थे। छोटी और विरल मूँछों के काली डोरी जैसे छोर मुँह के दोनों ओर झूल कर, छोटे-छोटे दाँतों से प्रकट होने वाले बचपन का विरोध कर रहे थे। एक ओर संकीर्ण माथे और दूसरी ओर छोटी गोल ठुड्डी से सीमित चौड़े मुख को रोककर पोंछी हुई-सी छोटी आँखें, वही सजल झलक देती थीं जो रेगिस्तान के जलाशय में सम्भव है। गेहुआँ रंग निराली धूप में रहने के कारण कहीं पुराने ताँबे जैसा

और कहीं झाँईदार हो गया है। बोझ बाँधने की गाँठ-गँठीली पुरानी रस्सी का एक छोर गले की माला बनता हुआ कन्धे से लटक रहा था, दूसरा कमरबन्द बन कर कोट के झबरेपन में कहीं छिपा, कहीं प्रकट था। ऐसा ही था यह जंग बहादुरसिंह उर्फ जंगिया। उसे अपने भाई धनसिंह के साथ मेरा सामान लेकर केदारनाथ होते हुए बदरीनाथ पुरी तक जाना और श्री नगर लौटना था। एक रुपया प्रतिदिन के हिसाब से प्रत्येक की मजदूरी तय हुई थी जिसमें एक आना फी रुपया कमीशन ठेकेदार को प्राप्त था।

'तुम्हारा भाई कहाँ है?'—पूछते ही—'धनिया, ओ धनिया' की पुकार मच गई। पर बार-बार सब के ढकेलने पर भी जो भाई के पीछे ही अड़ा रहा, उसे मैंने बिना किसी के बताये ही धनसिंह समझ लिया। जंगबहादुर का चचेरा भाई अपने छोटेपन के प्रति इतना सतर्क था कि उसे देखकर किसी पौराणिक अनुज का स्मरण हो आता था। गोल-मटोल कुछ पुष्ट शरीर वाले धनिया की आकृति भी उसके स्वभाव के अनुरूप थी। विरल भूरी भौंहों की सरल रेखा और छोटी नाक की कुछ नुकीली नोक उसकी सरलता का भी परिचय देती थी और तेजस्विता का भी। ओठों का दाहिना कोना कुछ ऊपर की ओर खिंचा-सा रहता था जिससे उसके मुख पर मुस्कराने का भाव स्थायी हो गया था। रंग की स्वच्छता और त्वचा की चिकनाहट से प्रकट होता था कि कुली-जीवन की सारी कठोरता उसने अभी नहीं झेली है। टाट के

पुराने पैजामे और जीन के फटे कोट ने उसे पराजित सिपाही की भूमिका दे डाली थी जो उसके मुख के भाव के साथ विरोधाभास उत्पन्न करती थी।

'पहाड़ के ऊँचे-नीचे रास्ते में मुझे अपना और अपने साथियों का जीवन इन्हें सौंपना होगा और मार्ग में जीवन की सब सुविधाओं के लिए ये मेरे संरक्षण में आ गये हैं।' इस विचार ने उन दोनों कुलियों के प्रति मेरे मन में अयाचित ममता उत्पन्न कर दी। मैंने कहा—"तुम दोनों समान देख लो, अधिक लगे तो एक कुली और ठीक कर लिया जायगा।"

आगे-आगे जंगिया और पीछे-पीछे धनिया ने कमरे में पैर रखा और मौसी तथा भक्तिन को विस्मित करते हुए भारी बंडलों को अनायास उठा-उठाकर बोझ का अनुमान लगाने लगे।

मैं पैदल ही लम्बी-लम्बी पर्वतीय यात्रायें कर चुकी हूँ जिनमें सफलता का मूल मन्त्र सामान कम रखना ही माना जाता है। अतः इस सम्बन्ध में मुझसे भूल होना सम्भव नहीं। फिर मैं यह विश्वास नहीं करती कि जिन यात्राओं में खाद्य-सामग्री मिल जाने की सुविधायें हैं वहाँ भी घी के पीपे और बिस्कुट के बंडल बीसियों दिन ढोते फिरा जावे। हिम के सुन्दर शिखरों की छाया में पॉल्सन का बटर और हन्टले पामर्स बिस्कुट खाना मेरी समझ में कम आता है; पर वहीं लकड़ी कंडे बटोर कर आलू भूनने और बाटी बनाने का सुख मैं विशेष रूप से जानती हूँ। मेरी मौसी अवश्य कुछ अधिक सामान ले जाने की इच्छा रखती थीं; परन्तु

मेरी छोटी-सी इच्छा को भी बहुत मूल्य देने का उनका स्वभाव है। उनके बेटे जिन तीर्थों में उन्हें नहीं ले जा सकते, वहीं मैं ले जा रही हूँ, अतः मैं सब बेटों से बड़ी हूँ और मेरी बुद्धि सब प्रकार विश्वसनीय है, इस सम्बन्ध में उन्हें कोई सन्देह नहीं था।

इस प्रकार सबके इने गिने कपड़े, बिस्तर, दवा का बक्स, कपड़े साफ करने के लिए साबुन आदि आवश्यक वस्तुयें ही साथ थीं जिन्हें जंगबहादुर ने पास कर दिया और दूसरे दिन सवेरे ही हमारी यात्रा आरम्भ हुई।

ऐसी यात्रा में चलचित्र के समान जो जीवन दिखाई देता है, उससे हम किसी जाति के सम्बन्ध में ऐसा बहुत कुछ ज्ञातव्य जान सकते हैं जो अन्य किसी प्रकार सम्भव नहीं होता।

घर में व्यक्ति अपने आश्रितों और सेवकों के प्रति अपने व्यवहार को छिपा सकता है, कृत्रिम बन सकता है; परन्तु यात्रा में ऐसा सहज नहीं होता। मनुष्य में जो भी स्वार्थपरता, विवेक-हीनता, क्रूरता और असहिष्णुता रहती है वह ऐसी यात्रा में पग-पग पर प्रकट होती चलती है। कुली को पैसे देते समय, उसके विश्राम और भोजन का समय निश्चित करते हुए, साथियों के सुख-दुःख की चिन्ता और सहायता के अवसर पर मनुष्य अपने अन्तरतम का ऐसा आभास दे देता है जिससे उसके चरित्र की अच्छी व्याख्या हो सकती है।

एक ओर श्वेत शतदल की पंखड़ियों की तरह कुछ खुली, कुछ बन्द, कहीं स्पष्ट, कहीं अलक्ष्य पर्वत-श्रेणियाँ और दूसरी ओर कहीं

हरितदल से फैले खेत और कहीं गली चाँदी जैसे सोतों के बीच में जो जीवन गतिशील है, उसे देखकर प्रसन्नता से अधिक करुणा आती है।

डांडी में बैठे हुए कोई लम्बोदर अपने हाँफते हुए कुलियों को 'सर्प-सर्प' कहकर इस तरह दौड़ाता है कि उसे देखकर हमें, स्वर्ग पर अधिकार पाकर भी देवता न बन पाने-वाले नहुष का स्मरण हो आता है। किसी डांडी में कोई सम्पन्न घर की शृङ्गारित प्रसाधित महिला पर्वत के सौन्दर्य की उपेक्षा कर झपकियाँ लेती जाती है। किसी में घुटे सिर और सूखी लकड़ी से शरीर वाली कोई वृद्धा, कटुतिक्त अनुपान से उत्पन्न मुद्रा धारण किये और राह में आँख गड़ाए, हिलती-डुलती चली जाती है। कहीं कोई धनहीन प्रौढ़ झप्पान में बैठ कर दोनों पाँव लटकाये हुए, याचना भाव से आकाश की ओर ताकता है, कहीं कोई छोटे टट्टू पर विराजमान वीर, घोड़े वाले को पूँछ पकड़ कर चलने के लिए मना कर रहा है, क्योंकि इस व्यायाम से वह सभीत हो उठता है। कहीं डांडी में मृगचर्म बिछा कर बैठे हुए मठाधीश, शंख-झालर लेकर पैदल चलने वाले शिष्यों को देख-देख कर सदेह स्वर्गारोहण का सुख अनुभव कर रहे हैं।

इस डांडी, झप्पान, टट्टू आदि से भरे पूरे दल के अतिरिक्त एक दूसरा दल भी है, जिसमें दरिद्रों का ही बाहुल्य है। प्रायः रुपयों के अभाव में इनमें से अधिकांश बिना टिकट ही रेल-यात्रा समाप्त कर आने में निपुण होते हैं। फिर पाँच रुपये से लेकर

पाँच आने तक अंटी में रखकर और गठरी में सत्तू-चबेना-गुड़ का पाथेय लेकर चलते हैं। जीवित लौटने के साधनों के अभाव में इनकी यात्रा सबसे अन्तिम बिदा के उपरान्त ही आरम्भ होती है। राह में जहाँ बीमार हुए साथी छोड़ कर आगे बढ़ गये, दो-चार दिन वहाँ ठहरने से सबका पाथेय और रुपया-धेली चुक जाने का डर रहता है और उस दशा में किसी का भी लक्ष्य तक पहुँचना असम्भव हो जाता है। इसी से वे सब घर से ही ऐसा समझौता करके चलते हैं, क्योंकि एक का न पहुँचना तो उसके व्यक्तिगत पाप का परिणाम है; पर यदि उसके कारण अन्य भी न पहुँच सकें तो दूसरों को न पहुँचने देने का पाप भी उसके सिर रहेगा।

चट्टी-चट्टी पर इनमें से दो-एक बीमार पड़ते रहते हैं और कहीं-कहीं मर भी जाते हैं। अन्त्येष्टि का काम यात्रियों से माँग-जाँच कर सम्पन्न किया जाता है। साधन न मिलने पर गहरा खड्ड तो स्वाभाविक समाधि है ही।

पैदल चलने-वालों में कभी-कभी भ्रमणप्रिय-टूरिस्ट भी आते जाते मिल जाते हैं। वे यात्रियों के अस्त्र-शस्त्र से लैस तो होते ही हैं, उनका पैदल चलना भी मनोविनोद के लिए ही रहता है, क्योंकि अधिकांश के साथ टट्टू रहते हैं, जिन्हें यात्रियों की सुविधा-नुसार कभी आगे, कभी पीछे चलना पड़ता है। दरिद्र पैदल चलने वालों से न डांडी वाले बोलते हैं, न नये फैशनेबिल यात्री।

डांडियों के काफले में भी अपरिचित नहीं; पर वह कुलियों तक ही सीमित रहती है। कभी किसी कुली को हैजा हो गया,

किसी को बुखार आ गया, किसी के गहरी चोट आ गई। बस तुरन्त दूसरा कुली ठीक कर लिया जाता है और यात्रा अविराम चलती रहती है। बीमार कुली भाग्य पर छोड़ दिया जाता है। जीवित रहा तो जहाँ से चला था, वहीं लौट कर दूसरा यात्री खोज लेता है; मर गया तो फेंक देने की सुविधा का अभाव नहीं। डांडियों के साथ सामान ढोनेवाले कुली भी रहते हैं; पर उन्हें भी डांडियों के साथ ही दौड़ना पड़ता है।

इन यात्रियों की स्थिति बहुत कुछ ऐसी रहती है जैसे हमारे यहाँ इक्के वालों की। वह बारह रुपये का एक टट्टू खरीद लेता है और उसे रात-दिन इस तरह दौड़ाता है कि कम से कम समय में छत्तीस वसूल हो जायँ। थके टूटे टट्टू के मर जाने पर वह बारह रुपये में नया खरीदने के उपरान्त भी लाभ में रहता है।

यात्री भी एक रुपया प्रतिदिन देकर कुली को खरीदता है; इसलिए लाभ की दृष्टि से तीन दिन का रास्ता एक दिन मे तय करने की इच्छा स्वाभाविक है, अन्यथा वह घाटे में रहेगा।

यात्री तो बैठा ऊँघता रहता है, पकवान, सूखे मेवे आदि उसके साथ होते हैं, अतः अधिक थकावट या अधिक भूख का प्रश्न ही नहीं उठता; पर वह कुलियों के विश्राम और भोजन के समय में से घटाता रहता है। सवेरे ही कह देता है कि बीस मील रास्ता तय करना होगा। चाहे जिस तरह चलो, पर शाम तक इतना न चलने पर मजदूरी काट ली जायगी और वे बेचारे मनुष्य-पशु हाँफ-हाँफ कर मुँह से फिचकुर निकालते हुए दौड़ते हैं।

आश्चर्य तो यह है कि सबल वे ही हैं। यदि उनमें से एक भी भृकुटियाँ टेढ़ी कर अपने सवार की ओर देख कर साभिप्राय इस सैकड़ों फ़ीट गहरे खड्ड की ओर देखने लगे तो सवार बेहोश हो जायगा। पर उन्हें क्रोध आवे तो कैसे!

इसी स्वर्ग के हृदय में बसी मृत्यु और पवित्रता के भीतर छिपी व्याधि में से हमें भी मार्ग बनाना पड़ा। मैं तो डांडी में बैठती नहीं, दूसरे भी पैदल ही चले। मनुष्य के भाव के समान स्पृहणीय और कुछ नहीं है। इसी से हमारे कुली स्नेहशील साथी बन सके, और आज उनकी स्मृति को मैं उस तीर्थ का पुण्यफल ही मानती हूँ। उन दोनों के पास दो टाट के टुकड़े और एक फटी काली कमली थी जिसे चौड़ाई की ओर से ओढ़ना कठिन था और लम्बाई की ओर से ओढ़ने पर यदि पैर ढँक जाते थे तो सिर का बाहर रहना अनिवार्य था और सिर ढँक लेने पर पैरों का बहिष्कार स्वाभाविक हो जाता था।

मलिन, बिना धुले, कपड़ों में भी उन दोनों भाइयों की स्वच्छता विषयक ज्ञान खो नहीं गया था। चट्टी में सबसे दूर अँधेरे कोने को खोज कर वे कड़कड़ाते जाड़े में कपड़े दूर रख, कौपीन-धारी बाबा जी के वेश में भात बनाते खाते थे। स्वच्छ कपड़ों के अभाव में आचार की समस्या का यह समाधान निमोनिया का निमंत्रण है, यह मैं प्रयत्न करके भी उन्हें समझा न सकी।

बर्तन के नाम से प्रत्येक के पास एक-एक लोहे का तसला था

जिसमें से एक में दाल बन जाती थी, दूसरे में भात। कभी-कभी दाल का खर्च बचाने के लिए वे झरनों के किनारे खोज कर लिगूण नाम का जगली शाक तोड़ लाते और उसी के साथ स्वाद ले-लेकर कच्ची-पक्की मोटी रोटियाँ खाते थे। मार्ग में आलू के अतिरिक्त कोई हरी तरकारी मिलती नहीं, पर इसे जगलियों के खाने योग्य विषैली घास समझ कर कोई खाने पर राजी नहीं होता था।

एक बार हठ-पूर्वक शाक का आतिथ्य स्वीकार कर लेने पर उसमें मेरा भी हिस्सा रहने लगा और फिर तो उसे हमारे व्यंजनों में महत्त्वपूर्ण स्थान मिल गया।

मार्ग में हम सब उनके पीछे चलते थे, अतः शेष शरीर बोझ की ओट में होने के कारण केवल उनके पैर ही मेरे निरीक्षण की सीमा में रहते थे। धनसिंह की पलकें चाहे संकोच से न उठती हों पर उसके पैर भाई के साथ दृढ़ता से उठते थे। जब कभी चढ़ाई पर उनके पंजों का भार एँड़ियों पर पड़ने लगता और आगे रक्खा हुआ पैर पीछे खिसकता जान पड़ता तब मैं बिना उनका मुख देखे ही थकावट का अनुमान लगा लेती थी। परन्तु 'जगबहादुर थक गये हो'—पूछते ही विचित्र भाषा में वही परिचित उत्तर मिलता—"अस्सा है माँ कुछ तकलीस नहीं"। अच्छा और तकलीफ के अपभ्रंश रूपों पर यदि हँसी नहीं आती थी तो स्वर की गम्भीरता के कारण।

जीवन में बहुत छोटी अवस्था से ही मैं 'माँ' का सम्बोधन और

उसके उपयुक्त ममता का उपहार पाती रही हूँ; परन्तु उन पर्वत-पुत्रों के माँ सम्बोधन में जो कोमल स्पर्श और ममता की सहज स्वीकृति रहती थी, वह अन्यत्र दुर्लभ रही है।

धनिया तो संकोच के कारण सिर नहीं उठा पाता था; पर जगिया राह में कई बार घूम-घूम कर हमारी आवश्यकताओं और थकावट का पता लेता रहता था। अन्त में एक दिन उसने अमूल्य वस्तु माँग बैठने-वाले याचक की मुद्रा से कहा—'माँ' आप आगे चलता तो कैसा होता! हम पीछू देखता है, फिर देखता है बोझा से गरदन नहीं घूमता। आगे रहेगा तो हम सिर ऊँचा करके देख लेगा—'वह गया या वह जाता है—और हमारा पाँव जल्दी उठेगा।' तब से हम लोग आगे रहने लगे।

आदि-बद्री पहुँच कर धनसिंह चट्टी के एक कोने में जाकर लेट गया और उसे जोर से बुखार चढ़ आया। मैंने अपने होमियो-पैथिक दवाओं के बक्स से कोई दवा खोज उसे दी और भक्तिन-चाय का अनुपान कर चतुर नर्स के गर्व का अनुभव करने लगी। जंगबहादुर को बैठे देख जब मैंने उसे बीमार के पैर दबाने का आदेश दिया तब परिचित संकोच के साथ उत्तर मिला—'मैं बड़ा है मा? वह सरम करता है, कैसा करेगा?"

शिष्टाचार की यह बात सुनकर मुझे विस्मय होना स्वाभाविक था। यहाँ तो एक सम्भ्रान्त परिवार की वृद्ध माता ने बताया था कि उसका लड़का जब-तब उस पर हाथ चला बैठता है और मातृत्व की दोहाई देने पर उत्तर मिलता है—'वह जमाना गया

जब तुम सब पैर पुजाती थीं। जब जन्मदात्री के सम्बन्ध में मनुष्य इतना शिष्ट हो उठा है तब सहोदरता विषयक शिष्टता की चर्चा करना व्यर्थ होगा।

पर जंगबहादुर का अनुज इतना प्रगतिशील नहीं हो पाया था; अतः बड़े भाई से पैर दबवाना उसे शिष्टाचार के विरुद्ध जान पड़े तो आश्चर्य नहीं।

कुली के बीमार पड़ जाने पर यात्री ठहरते नहीं; चट्टी से या निकट के गाँव से दूसरा कुली बुलाकर तुरन्त ही आगे बढ़ जाते हैं। इस नियम के कारण उन दोनों भाइयों के सरल सहज स्नेह का जो परिचय अनायास मिल गया वह अन्य परिस्थितियों में सुलभ न हो पाता।

जंगबहादुर जानता था कि छोटे भाई की जगह दूसरा कुली ले लेगा। पर वह उसे छोड़ कर चला जावे तो उसकी माँ को क्या उत्तर देगा। धनिया न बीमारी की दशा में लौट सकता था, न चट्टी में अकेले पड़े-पड़े अच्छा हो सकता था। कुछ दिन ठहर जाने पर रुपया समाप्त हो जाना निश्चित था; पर दूसरा बोझ मिलना अनिश्चित। ऐसी स्थिति में उसे छोड़कर बड़ा भाई कर्त्तव्यच्युत हुए बिना नहीं रह सकता। अतः उसने निश्चय कर लिया कि सबेरे दो नये कुली बुला लावेगा और स्वयं धनिया की देख-भाल के लिए रुक जायगा।

धनिया ने भाई के मुख से उसका निश्चय न सुनने पर भी सब कुछ जान लिया था। उसे विश्वास था कि उसका भाई उसे

छोड़ न सकेगा। अत. उसकी भी मजदूरी चली जायगी। जो थोड़े बहुत रुपये मिलेंगे, वे भी बीमारी में खर्च हो जायँगे—तब दूसरे बोझ की प्रतीक्षा करना भी कठिन होगा और लौटना भी। उसने निश्चय किया कि वह जैसे भी बनेगा, उठकर बोझ लेकर चलेगा।

सवेरे झरने से हाथ-मुँह धोकर लौटने पर मैंने चट्टी के नीचे-वाले खण्ड में जंगबहादुर को दो नये कुलियो के साथ प्रतीक्षा करते पाया और ऊपर धनसिंह को कपड़े की पट्टी से सिर कस कर बोझा सँभालते देखा। 'क्या तुम अच्छे हो गए'—सुनकर उसने थकावट से उत्पन्न पसीने की बूँदें पोंछते हुए बताया कि वह चल सकेगा। उसके न जाने से भाई का भी नुकसान होगा।

उन दोनों चचेरे भाइयों के स्नेह-भाव ने कुछ क्षण के लिए मुझे मूक कर दिया। 'मैं दो तीन दिन वहाँ ठहर कर उन्हीं के साथ यात्रा आरम्भ करूँगी'—यह सुनकर उनके मुखों पर जो विस्मय का भाव उदय हो आया, उसे देखकर ग्लानि भी हुई और खिन्नता भी। मनुष्य ने मनुष्य के प्रति अपने दुर्व्यवहार को इतना स्वाभाविक बना लिया है कि उसका अभाव विस्मय उत्पन्न करता है और उपस्थिति साधारण लगती है।

धनसिंह तीसरे दिन अच्छा हो गया और चौथे दिन हम फिर चले।

उन दोनों के पारस्परिक व्यवहार, सौहार्द्र आदि ने मेरे मन में उनके प्रति जो ममतामय आदर का भाव उत्पन्न कर दिया था,

वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। मेरी कुछ किताब, दवा का बक्स, बर्तन आदि वस्तुयें भारी थीं, अतः उनमें से प्रत्येक उन्हें अपने बोझ में बाँधकर दूसरे का भार हल्का कर देना चाहता था।

सवेरे एक दूसरे से पहले उठने का प्रयत्न करता था जिससे सब भारी चीजें अपने बोझ में बाँधने का अवसर पा सके। एक बताशा देने पर भी एक भाई दूसरे की खोज में दौड़ पड़ता था कोई देखने योग्य वस्तु सामने आते ही एक दूसरे को पुकारने लगता था। वे दोनों ऐसे दो बालकों के समान थे जिन्हें किसी ने जादू की छड़ी से छूकर इतना बड़ा कर दिया हो।

मार्ग के अन्य कुलियों के प्रति भी उनके व्यवहार में संवेदनशीलता और सहानुभूति ही रहती थी। एक बार पहाड़ से उतरती हुई गाय इतने वेग से मार्ग तक फिसलती चली आई कि उसके खुर की चोट से एक कुली का पाँव घायल हो गया। धनसिंह को सामान सौंपने के उपरान्त जंगबहादुर उस लोहूलुहान पैर-वाले कुली को पीठ पर लाद कर झरने तक ले गया और हमारे मरहम-पट्टी कर चुकने पर उसने उसे डेढ़ मील दूर अगली चट्टी तक पहुँचाया। इतना ही नहीं, उसे अपना और उसका बोझ भी लाना पड़ा और अँधेरे में ठिठुरते हुए, अपने फटे कपड़ों में लगे रक्त के दाग भी साफ़ करने पड़े। पर प्रश्न करने-वाला उससे एक ही उत्तर पा सकता था—'कुछ तकलीस नहीं अस्सा है।'

धनसिंह संकोची होने के कारण बात-चीत कम करता था;

पर जंगबहादुर जब-तब बैठकर अपने माता-पिता, गाँव-घर आदि की कहीं सुखद कहीं दुखद कथा कहता रहता था।

वह नैपाल के छोटे ग्राम में रहने वाले माता पिता का अन्तिम पुत्र है—जीविका का अन्य साधन न होने के कारण वह बचपन से ही अन्य कुली साथियों के साथ इस ओर आने लगा। गर्मियों के आरम्भ में वे आते और शरद के आरम्भ में लौट जाते हैं। किसी को मजदूरी के सिलसिले में कैलाश, किसी को पिंडारी और किसी को बदरी केदार की यात्रा करनी पड़ती है। ठेकेदार के पास सबके नाम और नम्बर रहते हैं। यदि कोई कुली लौट कर नहीं आता और समाचार भी नहीं मिलता तो वह मरा समझ लिया जाता है। इसी प्रकार जब कोई सीजन के अन्त में घर नहीं लौटता और न साथियों के द्वारा कोई समाचार भेजता है तब घर वाले भी उसे महायात्रा का यात्री मानकर क्रिया-कर्म द्वारा उसका पथ सुगम बनाने का प्रयत्न करते हैं।

जंगबहादुर अनेक बार आपत्तियों में पड़ चुका है; क्योंकि वह अधिक कमाने की इच्छा से दूर-दूर की यात्रायें ही नहीं करता, एक सीजन में कई कई यात्रायें कर डालता है। उसके अतिरिक्त जीवन के कारण ही विवाह योग्य कन्याओं के पिता उसे जामाता होने के उपयुक्त नहीं मानते थे। परन्तु दो वर्ष पहले उसे अविवाहित रहने के शाप से मुक्ति मिल चुकी है। वयस्क वधू के माता-पिता थे ही नहीं। सम्बन्धियों ने सोचा—चाहे वर किसी पर्वत शिखर पर हिम-समाधि ले-ले, चाहे धन कुबेर बन कर लौटे,

कन्या रहेगी तो ससुराल ही में, अतः बेचारे अभिभावक तो कर्त्तव्य-मुक्त हो सकेंगे।

पिछले वर्ष जंगबहादुर मजदूरी के लिए आया ही नहीं था, इस वर्ष खेत में कुछ हुआ नहीं और पत्नी ने पुत्ररत्न उपहार दे डाला तो कुछ न कुछ कमाने का प्रश्न उग्र हो उठा।

जब वह घर से चला तब उसका पुत्र दो मास का हो चुका था; पर वह इतना दुर्बल और छोटा था कि पिता उसे गोद में लेने का भी साहस नहीं कर सका। अब वह खाने-पीने से बची हुई मजदूरी घर ले जाने के लिए जमा कर रहा है और जो कुछ इनाम में मिल जाता है उससे पुत्र के लिए एक टोपा और कुरता बनाने की इच्छा रखता है। युवती पत्नी ने बार बार आँखें पोंछते, फटा आँचल फैला-फैलाकर बिनती की थी कि भले आदमी के साथ जाना और बोझ लेकर एक बार से अधिक मत चढ़ाई करना। पिता ने पीठ पर हाथ रखकर और आकाश की ओर धुँधली आँखें उठा कर मानों उसे परमात्मा को सौंप दिया था और माँ तो गाँव की सीमा तक रोती-रोती चली आई थी। बड़ी कठिनाई से अनेक आश्वासन देने पर भी वह लौटी नहीं, वरन् वहीं एक जराजीर्ण पेड़ का सहारा लेकर दृष्टि-पथ से बाहर जाते हुए पुत्र को आँसुओं के तार से बाँध लेने का निष्फल प्रयत्न करती रही। विदा का यह कर्म तो सनातन था; पर इस वर्ष उस अनुष्ठान में भाग लेने के लिए विकल पत्नी और मौन पुत्र और बढ़ गये थे। जंगबहादुर को परम समर्थ जानकर उसकी विधवा काकी ने भी अपना पुत्र

उसे सौंप दिया था, इसी से अब वह ऐसे ही यात्री की खोज में रहता है जो इन दोनों को साथ ले चले।

बद्रीनाथ की ओर मेरी यह दूसरी यात्रा थी। इसी से मैंने कम से कम समय में प्रशान्त अलकनन्दा के तट पर बसी उस अलकापुरी में पहुँच जाने के लिए केदार का पथ छोड़ देना ठीक समझा। पर जब वहाँ से लौटकर रुद्रप्रयाग पहुँचे जो उत्ताल तरंगों में ताण्डव करती हुई अलकनन्दा के किनारे तूफान में क्षणभर ठहरे हुए फूल का स्मरण दिलाता था तब केदार न जाने का पश्चात्ताप गहरा हो गया।

जिन्होंने, पाँच जल की धाराओं से घिरा और रंग-बिरंगे फूलों में छिपे चरणों से लेकर शून्य नीलिमा में प्रकट मस्तक तक सफेद हिम में समाधिस्थ केदार का पर्वत देखा है, वे ही उसका आकर्षण जान सकते हैं। मीलों दूर से ही यह उज्ज्वल शिखर अक्षरहीन आमंत्रण के समान खुला-खुला दिखायी देता है। जैसे-जैसे हम उसकी ओर बढ़ते हैं वह विस्तार में बढ़ता जाता है और उसकी रजत-विद्युत् रेखाओं के समान झिलमिलाती हुई रेखायें स्पष्टतर होती जाती हैं। लौटते समय जिस क्षण वह हमारी दृष्टि से ओझल हो जाता है उस समय हम एक विचित्र अकेलेपन का अनुभव करते हैं।

रुद्रप्रयाग पहुँच कर कुछ साथी इतने थक गये थे कि इतनी लम्बी चढ़ाई के लिए साहस न बाँध सके। वास्तव में बद्रीनाथ के पर्वत शिखर से केदार का शिखर केवल ढाई कोस के अन्तर पर

स्थित है; पर वहाँ तक पहुँचने में नौ दिन का समय लगता है। 'नौ दिन चले अढ़ाई कोस' की कहावत के मूल में सम्भवतः यही सत्य है।

जब मैंने वहाँ जाने का निश्चय कर लिया तब विशेष थके साथी रुद्रप्रयाग में हमारी प्रतीक्षा और विश्राम करके 'एक पथ दो काज' को चरितार्थ करने के लिए प्रस्तुत हो गये! जाने-वालों के सामान के लिए एक कुली पर्याप्त था, अतः दूसरे कुली की समस्या का समाधान आवश्यक हो उठा। मेरी व्यक्तिगत इच्छा थी कि दूसरा कुली भी यात्रियों के साथ विश्राम करे और अट्ठारह दिन के उपरान्त हमारे लौटने पर साथ चले।

पर जगबहादुर माँझी का अट्ठारह रुपया मुफ्त कैसे ले ले, उसने बहुत संकोच और वरदान याचक की मुद्रा से जो कहा, उसका आशय था कि वह माँझी को जान गया है। अत विश्वास-पूर्वक धनसिंह को छोड़ कर जा सकता है। यहाँ से श्रीनगर पहुँच कर वह नये यात्री की खोज भी करेगा और भाई की प्रतीक्षा भी। सबके लौट आने पर वह धनिया के साथ दूसरी यात्रा करेगा।

जंगबहादुर के स्वार्थत्याग पर कोई काव्य चाहे न लिखा जावे, पर मेरे हृदय में उसकी स्मृति एक कोमल मधुर कविता है। जब मैंने जगबहादुर को अपने साथ चलने का आदेश दिया और धनसिंह को रुद्रप्रयाग में विश्राम का तब उसकी आँखें अधिक सजल हो आईं या कंठ अधिक गद्गद् हो उठा, यह बताना कठिन है।

उसने बहुत साहस से लौट जाने का प्रस्ताव किया था, पर हम सब का बिछोह सहना उसके लिए कठिन था। कई दिन बाद उसने अपनी अटपटी भाषा में बताया—हम हियाँ, सरम से, अदब से नहीं रोया—फिर दूर जाकर जोर-जोर से रोया—सोचा माँजी जाता है और हमारे भीतर कैसा-कैसा तो होने लगा।'

वह यात्रा भी समाप्त हो गई और तब एक दिन हम सबको बस पर बैठा कर वे दोनों भाई खोये से खड़े रह गये। जंगबहादुर ने आँसू रोकने का प्रयास करते-करते कहा—'माँ जी, जीता रहना, फिर आना, जगिया का नाम चिट्ठी भेजना'। धनिया सदा के समान पृथ्वी पर दृष्टि गड़ाये, बीच-बीच में टपकते आँसुओं की भाषा में विदा दे रहा था। आज वे दोनों पर्वतपुत्र कहाँ होंगे सो तो मैं बता ही नहीं सकती; पर उनकी माँजी होकर मुझे जो सम्मान मिला, वह भी बताना सहज नहीं।

प्रश्न

१—नेपाली और भूटानी कुलियों की योग्यता का मापदण्ड क्या है?

२—जगिया और धनिया के प्रति लेखिका के मन में अयाचित ममता क्यों उत्पन्न हो गई?

३—यात्रा में यात्रियों के चरित्र की व्याख्या कैसे हो जाती है?

४—दरिद्र यात्री सबसे अन्तिम विदा के उपरान्त अपनी यात्रा क्यों आरम्भ करते हैं?

५—जगबहादुर क्यों अनेक बार आपत्तियों में पड़ चुका है?

अभ्यास

१—लेखिका ने जंगबहादुरसिंह का जो चित्र खींचा है, उसका अपने शब्दों में वर्णन करो।

२—'दैन्य और विचित्रता का जैसा समन्वय इन कुलियों के जीवन में मिलता है, वैसा अन्यत्र नहीं'—लेखिका के इस कथन पर प्रकाश डालो।

३—लेखिका की यात्रा का अपने शब्दों में वर्णन करो।

४—'पर्वत-पुत्रों में भी शिष्टाचार की भावना विद्यमान रहती है'—उदाहरण देकर समझाओ।

५—इन कुलियों के पारस्परिक व्यवहार, संवेदन-शीलता और सहानुभूति पर प्रकाश डालो।

६—जंगबहादुर के स्वार्थ-त्याग की भावना पर प्रकाश डालो।

७—अर्थ बताओ और अपने वाक्यों में इनका प्रयोग करो—

समन्वय, अविराम, सम्भ्रान्त, विरोधाभास, आश्वासन।

८—वाक्य-विश्लेषण करो—

"जिन्होंने पाँच जल की धाराओं से घिरा और रंग-बिरंगे फूलों में छिपे चरणों से लेकर शून्य नीलिमा में प्रकट मस्तक तक सफेद हिम में समाधिस्थ केदार का पर्वत देखा है, वे ही उसका आकर्षण जान सकते हैं।"

पाठ की सहायता

"उन पर्वत-पुत्रों के माँ सम्बोधन में जो कोमल स्पर्श और ममता की सहज स्वीकृति रहती थी वह अन्यत्र दुर्लभ रही है।"

पर्वत कठोर होता है, उसके पुत्रों में भी पिता का गुण होना चाहिए किन्तु कवि-हृदया लेखिका ने उनके माँ सम्बोधन में दूसरी जगह न मिलने वाला कोमल स्पर्श और स्वाभाविक ममत्व दिखाया है। यहाँ विषमता द्वारा लेखिका ने कोमल स्पर्श और स्वाभाविक ममता की तीव्रता बढ़ा दी है।

मीलों दूर से ही उज्ज्वल वह शिखर, अक्षर हीन आमन्त्रण के समान खुला-खुला दिखाई देता है।" 'उज्ज्वल शिखर' उपमेय, 'अक्षर हीन आमन्त्रण' उपमान, 'समान' वाचक और खुला-खुला धर्म है। इस प्रकार उपर्युक्त वाक्य में पूर्णोपमा अलंकार है। वाक्य का अर्थ—उज्ज्वल शिखर सफेद कागज है। उस पर कोई काला धब्बा या चिन्ह न होने के कारण वह बिना अक्षर का—बिना लिखा हुआ खुला निमन्त्रण पत्र है, जो लिफाफे में बन्द नहीं है। वह मीलों दूर से यात्रियों को अपनी ओर बुलाता है।

—:०:—

३४—निर्झर

[लेखक डा० रामकुमार वर्मा का परिचय बादल की मृत्यु शीर्षक पाठ में दिया जा चुका है।

इस पाठ में निर्झर का उच्चस्थान त्याग कर अधःपतित होना, अविदित प्रेमी के पद-रज-कन धोने के लिए चलना और गति खोकर कम्पित होना आदि सूक्तियों का रहस्य देखो।]

अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर !
इस एकांत प्रान्त प्राङ्गण में,
किसे सुनाते सुमधुर स्वर ?
अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर !

अपना ऊँचा स्थान त्याग कर,
क्यों करते हो अधःपतन ?
कौन तुम्हारा वह प्रेमी है,
जिसे खोजते हो वन-वन ?

विरह-व्यथा में अश्रु बहाकर,
जलमय कर डाला सब तन !
क्या धोने को चले स्वयं,
अविदित प्रेमी के पद-रज-कन !

लघु पाषाणों के टुकड़े भी,
तुमको देते हैं ठोकर !
क्षण-भर ही विचलित होकर,
कम्पित होते हो गति खोकर !

लघु लहरों के कम्पित कर से,
करते उत्सुक आलिंगन !
कौन तुम्हें पथ बतलाता है,
मौन खड़े हैं सब तरुगन ?

अविचल चल, जल का छल-छल
गिरि पर गिर-गिर कर कल कल स्वर।
पल-पल में प्रेमी के मन में,
गूंजे ए कातर निर्झर!

प्रश्न

१—कवि के दृष्टिकोण से निर्झर क्यों प्रवाहित हो रहा है?

२—'अविदित प्रेमी' से कवि का किस की ओर संकेत है?

३—अंतिम पद के शब्द-चयन में क्या विशेषता है?

४—तुम्हें कौन-सी पंक्तियाँ सबसे अधिक सुन्दर लगती हैं, कारण सहित बताओ।

अभ्यास

१—निर्झर के ऊपर यदि तुमने कोई और कविता पढ़ी हो तो उससे इसकी तुलना करो।

२—'अ' के प्रयोग से जिस प्रकार अविदित शब्द बना है, उसी प्रकार पाँच शब्द और बनाओ।

३—अन्तिम छन्द में 'ल' और 'र' की आवृत्ति से विशेष रमणीयता आगई है। इस प्रकार की छटा दूसरे छन्दों में भी ढूँढो।

४—प्राकृण, अधःपतन और आलिंगन को अर्थ सहित अपने शब्द-कोष में लिख लो।